समकालीन साहित्य, संस्कृति,
कला और विचार का मासिक

उत्तर प्रदेश

सितम्बर, 2026, वर्ष 50

निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा-ज्ञान के,
मिटत न हिय को शूल।।

– भारतेन्दु हरिश्चंद्र

वो बचपन था

–विश्व भूषण

तुम बिन बड़े अधूरे थे वो बचपन था
ख्वाब न कोई पूरे थे वो बचपन था।

उन वादों को भूल भी जाओ, क्या होता है
कंधे उचका कहना है वो बचपन था।

कच्ची गलियाँ नंगे पाँव भागते रहना
अजब मजा था ग़ज़ब सुकूँ था, वो बचपन था।

छुपा छुपाई धमा चौकड़ी जाना कोई भेद नहीं
छोड़ी यार पुरानी बातें वो बचपन था।

फिर बस्ते आये खुलीं कापियाँ खुलीं किताबें
जिन में मन न लगता था वो बचपन था।

आपस के वो हँसी ठहाके सैर सपाटे
कैसा पागल वक्त हुआ वो बचपन था।

फिर तुमको देखा अलग नजर से
और लगा जो अब तक बीता वो बचपन था।

एहसासों में तुम सांसों में तुम छाते जाते
पहला ही स्पर्श न भूले वो बचपन था।

इतनी समझ कहाँ थी कुछ आगे पीछे सोचें
कच्चा वाला प्यार हो गया वो बचपन था।

सपने सारे पूरे करके कभी सोचते हैं
कैसा खुद को समझाएं वो बचपन था।

यादों में अब भी तुम हो तुम ही तुम हो
कैसे खुद को समझाएँ वो बचपन था।

घर वालों के सपने और तुम्हें पाने की चाहत
सपनों के ही संग बहे वो बचपन था।

लेकिन दिल का वो कोना हरदम खाली है
तुम अब भी ही वो बचपन था।

◆

पता : वाराणसी (उ.प्र.)

अनुक्रम

आलेख

- हिन्दी दिवस बौद्धिक ईमानदारी की परीक्षा ❑ डॉ. विजय दीक्षित / 3

साक्षात्कार वार्ता

- समाज की नब्ज पर हाथ रखता है साहित्य ❑ रतिभान त्रिपाठी / 6

कहानियाँ

- बदलते रिश्ते ❑ प्रतिभा मिश्रा / 10
- अनमोल मोती ❑ वंदना संतोष पंवार / 14
- अदृश्य टीले ❑ सुमन शेखर / 17

पर्यटन

- बनारस की गंगा ❑ नेहा वर्मा / 23

कविताएँ

- वो बचपन था ❑ विश्व भूषण / आवरण–2
- चंद्रमा है मन मेरा ❑ मेघा राठी / आवरण–3
- अम्मा ❑ पारुल मित्तल / 26
- छूटा गांव का सहारा ❑ डॉ. अलका अस्थाना 'अमृतमयी' / 27
- कल हमारा है ❑ डॉ. रविशंकर पांडेय / 27
- हिंदी पर सिद्धेश्वर की कुछ कविताएं ❑ सिद्धेश्वर / 28
- पिता के उपकार ❑ रविन्द्र सिंह पँवार / 29

विशेष लेख

- पारिभाषिक शब्दावली और भाषा निर्माण ❑ आरती 'आयुशी' / 30

सम्मान

- ''उत्तर प्रदेश'' के दिनेश कुमार गुप्ता 'संपादन प्रवीण' की मानद उपाधि / 32

उत्तर प्रदेश

❑ वर्ष–50 ❑ अंक–91
❑ सितम्बर, 2026

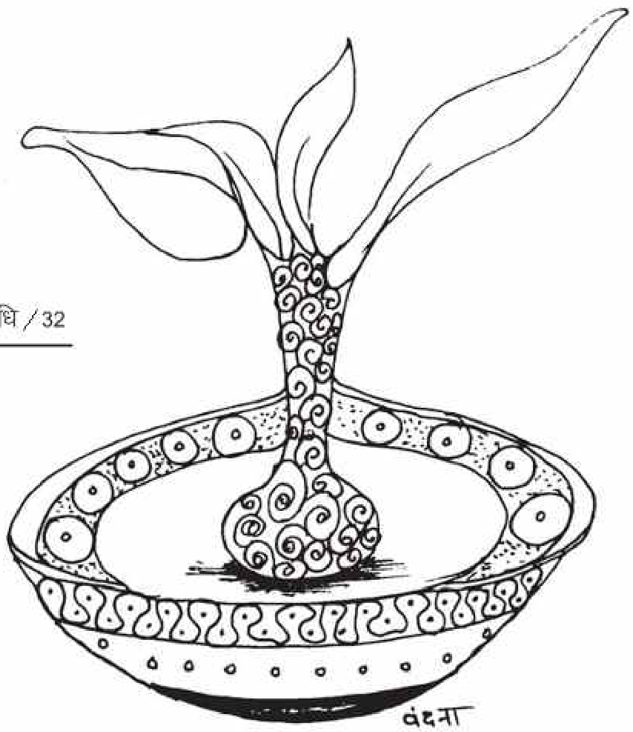

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : ❑ **संजय प्रसाद**
अपर मुख्य सचिव, सूचना

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी : ❑ **विशाल सिंह**
सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश

❑ **अरविन्द कुमार मिश्र**
अपर निदेशक, सूचना

❑ **चन्द्र विजय वर्मा**
सहा. निदेशक (प्रकाशन)

प्रभारी सम्पादक सूचना : ❑ **दिनेश कुमार गुप्ता**

सहयोग : ❑ **अजय कुमार द्विवेदी**
सहयुक्त सम्पादक

आवरण : **अवधेश मिश्रा**

भीतरी रेखांकन : **आस्था / वंदना**

सम्पादकीय संपर्क : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
ईमेल : **upmasik@gmail.com**

दूरभाष : कार्यालय : ई.पी.ए.बी.एक्स 0522–2239132–33, 9412674759

पत्रिका information.up.nic.in वेबसाइट पर उपलब्ध है।

❑ **एक प्रति का मूल्य** : पंद्रह रुपये
❑ **वार्षिक सदस्यता** : एक सौ अस्सी रुपये
❑ **द्विवार्षिक सदस्यता** : तीन सौ साठ रूपये
❑ **त्रैवार्षिक सदस्यता** : पांच सौ चालीस रुपये

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' और सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

–सम्पादक

आवर्तन

वैसे तो हर दिन, हर माह, हर ऋतु,हर वर्ष भगवान के बनाए हुए है। हर क्षण अत्यंत उपयोगी है। यह हम पर निर्भर करता है कि हम उसका उपयोग किस तरह करते हैं। ईश्वर के वचन हैं कि सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहिं भाए। हम विषयांतर हुए बगैर सीधे सम पर आते हैं और बात करते हैं सितंबर माह की। इस महीने का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि इसी माह संसार की गीता का गूढ़ ज्ञान प्रदान करने वाले योगेश्वर श्रीकृष्ण का प्राकट्य दिवस यानी जन्माष्टमी पड़ रही है। सिद्धि और बुद्धि के पति प्रथम पूज्य गणेश जी का प्राकट्योत्सव भी इसी माह होना है। देव शिल्पी विश्वकर्मा का जन्मोत्सव भी इसी माह है। जैन धर्म का पर्युषण पर्व भी इसी माह पड़ रहा है। सितम्बर माह में ही हिंदी के एक युग का प्रवर्तन करने वाले भारतेंदु हरिश्चन्द की जयंती पड़ रही है, जिसने निज भाषा उन्नति अहै सब धर्मन को मूल का महामंत्र इस देश को दिया था। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर का भी यह जयंती माह है। जिन्होंने उदासीन तबके की आत्मा को झकझोरने का अनवरत प्रयास किया। जो तटस्थ है समय लिखेगा उसका भी इतिहास, सितंबर माह में ही दुष्यंत कुमार जैसे महान गजलकार का जन्म हुआ था जिसने संसार को आलोचना की मर्यादा सिखाई। मत कहो आकाश में कुहरा घना है। यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है। वैसे तो यह वह महीना है, जिसमें हिंदी दिवस मनाया जाता है। हिंदी प्रेमियों का उत्साह और हिंदी के तमाम साहित्यिक अनुष्ठानों की गूंज इस माह तेज हो जाती है। कितना अच्छा होता कि हिंदी को विश्व गौरव प्रदान करने के प्रयास पूरे साल चल पाते। वैसे भी हमें सोचना होगा कि साहित्य लोकमंगल का विषय है। अध्ययन–मनन और चिंतन का विषय है। साहित्य चिंता करता है मगर देश की। स्वार्थ का नहीं, परमार्थ का विचार करता है। रामचरित मानस इसका प्रमाण है। जहाँ महर्षि विश्वामित्र का उद्वेलन दिखाई पड़ता है। उनकी चिंता असुरों के अत्याचार के विरुद्ध प्रकट होती है। वह समस्या पर विचार भी करती है और उसका समाधान भी तलाशती है। गाधि तनय मन चिंता व्यापी। केहि विधि मरिहहिं निसिचर पापी। साहित्य भी समाज में व्याप्त असुरता को मिटाने पर विचार करता है। सामाजिक बुराइयों, अनाचार, अत्याचार और अवांछनीयताओं पर चिंतन –मनन करता है, उनसे विमुक्ति का प्रयास करता है। देश–दुनिया में जो कुछ भी गलत हो रहा है, उसके खिलाफ जागृति फैलाने के लिए विचारों का शंखनाद करता है। विकसित भारत के निर्माण का जन्म भी विचार की कोख से हुआ है। जहां विचार है, वहीं साहित्य है। वहीं प्रगति है। जो चिंतन ही नहीं करेगा, वह आगे बढ़ेगा भी तो किस तरह। आंख मूंद कर चलने में गिरने और टकराकर चोटिल होने का खतरा तो रहता ही है। साहित्य हमें इन खतरों से आगाह भी करता है और बचाता भी है। आखिर वह लोक मंगल की भावना का संवाहक जो ठहरा। जहां लोक–मंगल होता है, वहां राग–द्वेष की जगह नहीं होती। साहित्य की नदी अविरल बहती है कलकल–छलछल, लेकिन इसमें स्नान तो कोई आत्मानंदी ही कर पाता है। साहित्य का रस चखने वाला अन्य किसी रस की इच्छा नहीं करता। साहित्य सरिता में तो बस डूब जाने का मन करता है। जो साहित्य की नदी में उतरता नहीं, वह ज्ञान की थाह पाने से वंचित रह जाता है। जो इसमें डुबकी लगाता है, वही कुछ पाता है। कुछ प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। जिन डूबा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ। मैं बपुरा बूड़न डरा रहा किनारे बैठ। जो समाज समस्याओं से लड़ने से डर जाता है, उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। सितम्बर माह तो वैचारिक संघर्षों का, चेतना और परिष्कार का, सृजन और संवर्धन का प्रतिनिधि माह है। यह पाश्चात्य भाषा के व्यामोह जाल से उबरने का माह भी है। आएं, संकल्प लें कि हम हिंदी और अपनी अन्य भारतीय भाषाओं को न केवल जीवंत और जागृत बनाएंगे बल्कि देश को विकास के सर्वोच्च शिखर पर ले जाने का भगीरथ प्रयास भी करेंगे।

● **दिनेश कुमार गुप्ता**

हिन्दी दिवस बौद्धिक ईमानदारी की परीक्षा

❑ डॉ. विजय दीक्षित

चौदह सितम्बर आते ही हिन्दी हमारे सार्वजनिक जीवन में अचानक बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। कार्यालयों में हिन्दी सप्ताह शुरू होता है, प्रतियोगिताएँ होती हैं, भाषण दिए जाते हैं, पुरस्कार बाँटे जाते हैं और हिन्दी के गौरव का स्मरण किया जाता है। कुछ दिनों बाद सब कुछ सामान्य हो जाता है। हिन्दी फिर वही भाषा बन जाती है, जिसका इस्तेमाल तो हम करते हैं, लेकिन जिसके भविष्य को लेकर गंभीरता से सोचने का समय हमारे पास नहीं होता।

यहीं से हिन्दी दिवस का सबसे असुविधाजनक प्रश्न पैदा होता है–क्या भाषा के प्रति हमारा प्रेम केवल एक वार्षिक उत्सव है?

हिन्दी दिवस को यदि केवल उत्सव बना दिया जाए तो वह हिन्दी के पक्ष में दिखाई देने वाला ऐसा आयोजन बन जाता है, जिसमें हिन्दी की वास्तविक समस्याएं अक्सर अनुपस्थित रहती हैं। भाषा का सम्मान समारोहों से नहीं, उसके जीवंत और रचनात्मक प्रयोग से तय होता है। कोई भाषा तभी मजबूत होती है जब वह अपने समय के कठिन प्रश्नों को व्यक्त कर सके, नए ज्ञान को आत्मसात कर सके और भविष्य की कल्पना करने की क्षमता रखे।

इसलिए हिन्दी दिवस को हिन्दी की प्रशंसा का दिन नहीं, हिन्दी समाज के आत्मपरीक्षण का दिन होना चाहिए।

भाषा और आत्मसम्मान

हिन्दी की आधुनिक यात्रा केवल भाषा की यात्रा नहीं है। यह भारतीय समाज में आधुनिक चेतना, लोकतंत्र, शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन की यात्रा से जुड़ी हुई है। महात्मा गांधी ने भारतीय भाषाओं में शिक्षा और सार्वजनिक जीवन की आवश्यकता पर बार–बार बल दिया था। उनका आग्रह किसी भाषा को दूसरी भाषा के विरुद्ध खड़ा करना नहीं था। वे ऐसी शिक्षा और संचार व्यवस्था चाहते थे जो भारतीय समाज की वास्तविक भाषायी जमीन से जुड़ी हो।

भारतीय संविधान ने भी भाषा के प्रश्न को अत्यंत सावधानी से देखा। संविधान के अनुच्छेद 343 में संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी का प्रावधान किया गया, लेकिन भारत की भाषायी विविधता को देखते हुए भाषा का प्रश्न कभी सरल प्रशासनिक प्रश्न नहीं रहा। भारत में

हिन्दी का भविष्य तभी सुरक्षित हो सकता है जब वह भारतीय बहुभाषिकता के साथ संवाद करती हुई आगे बढ़े।

यहीं हिन्दी के समर्थकों के सामन पहली बौद्धिक जिम्मेदारी आती है—हिन्दी का सम्मान भारतीय भाषाओं के सम्मान से अलग नहीं किया जा सकता।

हिन्दी को बड़ा बनाने का अर्थ यह नहीं कि तमिल, बंगाली, मराठी, असमिया, कन्नड़, मलयालम, तेलुगु, उड़िया, पंजाबी, उर्दू या अन्य भारतीय भाषाओं की जगह छोटी कर दी जाए। भारत की भाषाएँ एक—दूसरे की प्रतिद्वंद्वी नहीं, बल्कि एक विशाल सांस्कृतिक परिवार की अलग—अलग स्मृतियां हैं।

हिन्दी की असली चुनौती कहां है?

हिन्दी की सबसे बड़ी समस्या यह नहीं कि हिन्दी बोलने वाले कम हैं। इसके विपरीत हिन्दी का सामाजिक विस्तार बहुत व्यापक है। उसकी असली चुनौती यह है कि क्या हिन्दी आधुनिक ज्ञान की पर्याप्त भाषा बन पा रही है?

क्या हमारे विश्वविद्यालयों में उच्चस्तरीय शोध हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में हो रहा है?

क्या विज्ञान, चिकित्सा, अर्थशास्त्र, दर्शन, समाजशास्त्र और तकनीक के नवीनतम विमर्श हिन्दी में सहज उपलब्ध हैं?

क्या हिन्दी में ऐसी पुस्तकों का निर्माण हो रहा है जिन्हें पढ़कर कोई विद्यार्थी विश्वस्तरीय ज्ञान से सीधे संवाद कर सके?

यदि इन प्रश्नों का उत्तर पूरी तरह सकारात्मक नहीं है, तो हिन्दी दिवस पर केवल गौरवगान करना आत्मसंतोष होगा।

भाषा का भविष्य उसके बोलने वालों की संख्या से जितना तय होता है, उससे कहीं अधिक उसके ज्ञान—संसार से तय होता है। जिस भाषा में केवल भावनाएं हों, लेकिन आधुनिक ज्ञान का पर्याप्त भंडार न हो, वह धीरे—धीरे अपने ही समाज के बौद्धिक जीवन में पीछे हटने लगती है।

इसलिए आज आवश्यकता हिन्दी को बचाने की नहीं, हिन्दी में सोचने की संस्कृति को बचाने की है। भाषा तभी जीवित रहती है जब वह अपने समय से असहमत होने का साहस रखती है। जो भाषा केवल प्रशंसा सुनती है, वह धीरे—धीरे प्रश्न पूछना भूल जाती है और जो भाषा प्रश्न पूछना भूल जाती है, वह इतिहास में जीवित नहीं रहती, सिर्फ स्मारकों में बची रह जाती है।

हिन्दी दिवस को यदि केवल उत्सव बना दिया जाए तो वह हिन्दी के पक्ष में दिखाई देने वाला ऐसा आयोजन बन जाता है, जिसमें हिन्दी की वास्तविक समस्याएं अक्सर अनुपस्थित रहती हैं। भाषा का सम्मान समारोहों से नहीं, उसके जीवंत और रचनात्मक प्रयोग से तय होता है। कोई भाषा तभी मजबूत होती है जब वह अपने समय के कठिन प्रश्नों को व्यक्त कर सके, नए ज्ञान को आत्मसात कर सके और भविष्य की कल्पना करने की क्षमता रखे।

हिन्दी और शिक्षा

नई शिक्षा नीति 2020 ने मातृभाषाओं और भारतीय भाषाओं में शिक्षा के प्रश्न को नए महत्व के साथ सामने रखा है। यह स्वागतयोग्य दिशा है। लेकिन नीति और वास्तविकता के बीच की दूरी को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

मातृभाषा में शिक्षा की बात करना आसान है। उसके लिए उच्च गुणवत्ता वाली पाठ्यपुस्तकें, प्रशिक्षित शिक्षक, वैज्ञानिक शब्दावली, अनुवाद, डिजिटल सामग्री और उच्च शिक्षा के संसाधन तैयार करना कठिन काम है।

हिन्दी के सामने चुनौती यही है कि वह केवल प्राथमिक या भावनात्मक शिक्षा की भाषा न रह जाए, बल्कि विश्वविद्यालय, प्रयोगशाला, शोध—केंद्र और ज्ञान—विमर्श की भाषा भी बने।

यहां सरकारों की भूमिका महत्वपूर्ण है, लेकिन अकेले सरकारें यह काम नहीं कर सकतीं। विश्वविद्यालयों, लेखकों, वैज्ञानिकों, अनुवादकों, प्रकाशकों और तकनीकी संस्थानों को मिलकर हिन्दी के ज्ञान—संसार का विस्तार करना होगा।

डिजिटल युग की नई संभावना

इक्कीसवीं सदी में भाषा के सामने एक नई दुनिया खुली है—डिजिटल दुनिया।

सोशल मीडिया, ई—पुस्तकें, ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल अभिलेख और कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने भारतीय भाषाओं के लिए अभूतपूर्व संभावनाएं पैदा की हैं। आज हिन्दी में सामग्री तैयार करना पहले की तुलना में कहीं अधिक आसान है। लेकिन सुविधा के साथ एक खतरा भी आया है—सामग्री की अधिकता और ज्ञान की कमी।

हिन्दी इंटरनेट पर बहुत दिखाई देती है। प्रश्न यह है कि

उसमें कितना विश्वसनीय ज्ञान उपलब्ध है?

कितने अच्छे डिजिटल पुस्तकालय हैं? कितने शोधग्रंथ सहज उपलब्ध हैं? कितनी गुणवत्तापूर्ण सामग्री विद्यार्थियां और शोधार्थियों तक पहुँचती है?

यदि हिन्दी डिजिटल युग में केवल मनोरंजन और तात्कालिक प्रतिक्रिया की भाषा बनकर रह गई, तो उसकी संख्या बढ़ सकती है, लेकिन उसकी बौद्धिक शक्ति नहीं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के दौर में यह प्रश्न और महत्वपूर्ण हो गया है। मशीनें हिन्दी पढ़ और लिख सकेंगी–यह उपलब्धि है, लेकिन हिन्दी में मशीनों को क्या पढ़ाया जाएगा, यह उससे बड़ा प्रश्न है। यदि हमारा डिजिटल ज्ञान–संसार कमजोर है, तो तकनीक भी उसी कमजोरी को आगे ले जाएगी।

हिन्दी समाज को भी कटघरे में खड़ा होना होगा

हिन्दी के संकट के लिए केवल सरकारों को दोष देना आसान है, लेकिन हिन्दी समाज को भी अपने भीतर देखना होगा।

हम कितनी हिन्दी पुस्तकें खरीदते हैं? कितनी गंभीर हिन्दी पत्रिकाएँ पढ़ते हैं? कितने विद्यार्थी हिन्दी में शोध करना चाहते हैं? कितने लेखक अपने समय के विज्ञान, तकनीक, अर्थव्यवस्था और राजनीति पर गहराई से लिखते हैं?

हिन्दी को सम्मान देने की सबसे पहली जिम्मेदारी हिन्दी भाषियों की ही है।

विडम्बना यह है कि हम हिन्दी के सम्मान की चिंता करत हुए भी अपने बच्चों को हिन्दी में पढ़ने से रोक सकते हैं, हिन्दी की किताब खरीदने में संकोच कर सकते हैं और हिन्दी में उच्च शिक्षा को कम उपयोगी समझ सकते हैं। इस दोहरेपन से बाहर निकलना होगा।

हिन्दी के लिए सबसे बड़ी चुनौती अंग्रेजी नहीं है। हिन्दी के प्रति हमारा व्यवहार ही उसकी सबसे बड़ी परीक्षा है।

उत्सव से उत्तरदायित्व तक

हिन्दी दिवस का अर्थ यदि केवल हिन्दी सप्ताह, हिन्दी पखवाड़ा और औपचारिक पुरस्कारों तक सीमित है, तो हम भाषा के साथ न्याय नहीं कर रहे।

हिन्दी दिवस को हमें एक प्रश्न–दिवस बनाना चाहिए–

हम हिन्दी में क्या नया रच रहे हैं?

कौन–सा नया ज्ञान हिन्दी में ला रह हैं?

कौन सी विश्व–स्तरीय पुस्तक का अनुवाद कर रहे हैं?

कौन सा वैज्ञानिक विचार हिन्दी में उपलब्ध करा रहे हैं?

कौन सी नई शब्दावली विकसित कर रहे हैं?

और सबसे महत्वपूर्ण; क्या हम हिन्दी को भविष्य की भाषा बना रहे हैं या केवल अतीत के गौरव की भाषा?

यहीं से हिन्दी दिवस का वास्तविक अर्थ शुरू होता है।

हिन्दी का भविष्य किसी एक सरकार, किसी एक संस्था या किसी एक पीढ़ी क हाथ में नहीं है। सरकारें नीतियाँ बना सकती हैं, संस्थाएं संसाधन दे सकती हैं, विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम बदल सकते हैं, लेकिन भाषा का वास्तविक भविष्य उसके समाज की बौद्धिक आकांक्षा तय करती है।

हिन्दी को केवल बोलने वालों की बड़ी संख्या पर गर्व नहीं करना चाहिए। उसे यह साबित करना होगा कि वह ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, तकनीक, साहित्य और लोकतांत्रिक संवाद की सक्षम भाषा है।

हमें हिन्दी को दूसरी भारतीय भाषाओं के विरुद्ध नहीं, उनके साथ खड़ा करना होगा। हमें हिन्दी के लिए अंग्रेजी से लड़ने के बजाय हिन्दी में वह ज्ञान पैदा करना होगा जिसकी आवश्यकता समाज को है।

आखिरकार भाषा का सबसे बड़ा सम्मान यह नहीं कि उसके नाम पर कितने समारोह हुए। उसका सबसे बड़ा सम्मान यह है कि उसमें कितने नए विचार जन्मे।

हिन्दी दिवस इसलिए उत्सव से अधिक परीक्षा है–हमारी भाषा की नहीं, हमारी बौद्धिक ईमानदारी की।

भाषाएं आदेशों से प्रतिष्ठा नहीं पातीं, वे तब प्रतिष्ठित होती हैं जब उनमें भविष्य लिखा जाता है। हिन्दी का भविष्य चौदह सितम्बर के मंचों पर नहीं, उन कक्षाओं, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं, डिजिटल मंचों और लेखकों की मेजों पर तय होगा जहां कोई अपने समय के सबसे कठिन प्रश्न को हिन्दी में पूछने और उसका उत्तर खोजने का साहस करता है।

और शायद उस दिन हिन्दी दिवस मनाने की आवश्यकता कम नहीं होगी। उसका अर्थ बदल जाएगा। ◆

पता : निवास–सी–1/301, जीवन एन्क्लेव, सुशांत गोल्फ सिटी, लखनऊ–226030

मो. : 7905323325

समाज की नब्ज पर हाथ रखता है साहित्य

❑ (साहित्य अकादमी पुरस्कार विजेता और प्रसिद्ध साहित्यकार ममता कालिया से रतिभान त्रिपाठी की बातचीत)

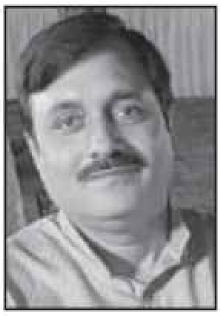

हिंदी साहित्य जगत की सशक्त हस्ताक्षर ममता कालिया को भला कौन नहीं जानता है। वह लोकप्रिय कहानीकार हैं, समर्थ उपन्यासकार हैं और साहित्य की अनेक विधाओं में अच्छा खासा दखल रखती हैं। उम्र के 86वें बरस में भी वह चैतन्य भाव से लेखनरत हैं। साहित्यिक समारोहों में वह अब भी ऐसे शामिल होती हैं जैसे कोई युवा रचनाकार।

उनकी कहानियों ने जन–मन की भावना व्यक्त हुई है। उनके उपन्यासों में वो अफसाने हैं जिन्हें शायद वही बयान कर सकती हैं। समूचा हिंदी जगत उनकी सुदीर्घ रचना यात्रा का साक्षी है। उनके उपन्यास बेघर, सुक्खम दुक्खम, दौड़ के अलावा कहानी संग्रहों में छुटकारा, सीट नंबर छह, मुखौटा, जांच अभी जारी है आदि भी खूब चर्चित रहे। संस्मरणों पर आधारित उनकी बहुचर्चित पुस्तक 'जीते जी इलाहाबाद' को तो पाठकों ने हाथों–हाथ लिया। इसी पुस्तक के लिए उन्हें हाल में ही साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है।

2 नवंबर, 1940 को मथुरा वृंदावन में जन्मीं ममता जी के पिता विद्याभूषण अग्रवाल एक सुपरिचित कवि रहे हैं। पढ़ाई–लिखाई के बाद ममता जी का विवाह रवीन्द्र कालिया से विवाह हुआ, जो खुद भी एक अच्छे कहानीकार रहे हैं। ममता जी की लेखनी का रंग तब और चटख हुआ जब वह इलाहाबाद आईं और उन्हें एक घनीभूत साहित्यिक परिवेश मिला। कहानियों और उपन्यासों के जरिए उन्हें खासी ख्याति मिली।

वैसे तो ममता कालिया को पहले साहित्य भूषण सम्मान, व्यास सम्मान समेत अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक सम्मान मिल चुके हैं लेकिन हाल में ही उन्हें साहित्य अकादमी सम्मान मिला है। ममता कालिया का मानना है कि आजकल के सोशल मीडिया के दौर में असल साहित्य भले ही कई बार ओझल होता सा लगता हो पर यह ध्यान रहे कि गंभीर साहित्य का दर्जा हमेशा ऊपर ही रहेगा। यही सच है। इस बात को सोशल मीडिया पर साहित्य लिखने वाला युवा वर्ग भी समझ रहा है। ममता कालिया की सुदीर्घ रचना यात्रा को लेकर वरिष्ठ पत्रकार रतिभान त्रिपाठी ने उनसे बातचीत की। यहां प्रस्तुत हैं बातचीत के अंश–

– **आपको साहित्य अकादमी अवार्ड मिला। बहुत बहुत बधाई। यह अवार्ड मिलने पर लेखन जगत के बहुत सारे लोग खुश हुए हैं लेकिन बहुतेरों ने तरह–तरह के विवाद भी खड़े किए हैं। आपका क्या कहना है?**

– दखिए हिंदी वालों की यह अदा है कि हर साल जब हिंदी का साहित्य अकादमी सम्मान घोषित होता है, हंगामा जरूर होता है। खराब लेखक भी उतने ही परिश्रम से लिखता है, जितने से अच्छा लेखक। फिर इतनी बड़ी संख्या में लोग लिख रहे हैं। अगर उनमें पुरस्कार की कामना होती है तो इसमें बुरा क्या है? ताज्जुब तब होता है कि शेष 23 भाषाओं के पुरस्कारों को लेकर कोई रोआराट नहीं मचता। मेरा सुझाव है कि हिंदी की व्याप्ति को देखकर साहित्य अकादमी को पुरस्कारों की संख्या बढ़ा देनी चाहिए। सोशल मीडिया की सहज उपलब्धि के चलते ट्रोलर्स के फतवेबाजी का नया काम मिल जाता है। हमारे हिस्से की दुनिया में साहित्य अकादमी पुरस्कार को ऑस्कर और नोबल का ओहदा मिल रहा है।

– **आपकी नजर में साहित्य और समाज में कैसा रिश्ता होता है?**

– साहित्य ने हिमालय की कंदरा में जन्म नही लिया। वह समाज की रचना से ही अस्तित्व में आया। दोनों में संवाद खुला रहता है। कभी सामंजस्य तो कभी भिड़ंत रहती है।

कलावादी, व्यक्तिवादी लेखकों ने साहित्य को स्वान्तः सुखाय कह–कह कर बहुत छूट ली। अपनी तृष्णाएं, ऐषणाएं, हताशाएं, सब साहित्य में ठूंसीं। लेकिन सजग लेखक और पाठक ने कभी भटकाव की राह नहीं पकड़ी।

साहित्य समाज की धड़कन पर, उसकी नब्ज पर हाथ रखता है। निदान वह न दे पाए, लक्षण चीन्ह लेता है। इसीलिए सैकड़ों साल पहले लिखी गयी पुस्तकें भी ढूंढ–ढूंढ कर पढ़ी जाती हैं।

आज वाक युग आरंभ हो गया है। हर समय हम सुन रहे या बोल रहे हैं।इसी से अनिवार्य मानवीय प्रवृत्तियों की उपेक्षा हो रही है। बात–बात में हिंसा, क्रोध और अनुदारता इसलिए फैल रही है कि लोग किताबों तक कम जा रहे हैं। रील के 50 सेकंड उन्हें ज्ञान प्रदान करेंगे तो यही होगा।

– **आज के साहित्यिक परिदृश्य में जब बहुत कुछ गड्ड–मड्ड सा लगता है तब साहित्य को लेकर आपकी क्या राय बनती है?**

– किसी भी लेखक के लिए विरासत हमेशा पृष्ठभूमि का काम करती है। उसके आगे की दुर्गम यात्रा लेखक की अपनी होती है। अपने पिता के आदर्शवाद को पात्रों में ढालूं तो बड़ा फ्लॉप किस्म का किरदार बने लेकिन पति रवि का यथार्थवाद ज्यादा उपयोगी लग रहा है। अमरकांत की सपाट बयानी, शैलेश मटियानी का चरित्र–चित्रण कौशल, ज्ञानरंजन का आक्राश, काशीनाथ सिंह की सहज ऊष्मा, इन सबसे मैंन खूब ग्रहण किया। इसी वजह स साहित्य क कुछ विषयों का लेकर मरी नकारात्मक सोच पर विराम लगा। इसके बाद कलम रुकी नहीं। कहानी हो या उपन्यास, दोनों पर लगातार कलम चलाई।

– **जब आपने लिखना शुरू किया तब के लेखकों और आज के दौर के लेखकों में आपको कैसा अंतर दिखता है। क्या आज वैसा माहौल लगता है जैसा पहले था?**

– आपको पता ही है कि इलाहाबाद लेखकों, संपादकों और पाठकों का शहर है। गुटबंदियों, हदबंदियों की राजनीति वहां नहीं होगी तो और कहां होगी ? सबसे प्रमुख गुटबंदी तो परिमल और प्रलेस की थी। परिमल धनसम्पन्न गुट था तो प्रलेस विचार सम्पन्न। कॉफी हाउस से लगाकर युनिवर्सिटी तक ये तीर तने रहते। बावजूद इसके, संवाद बंद नहीं होता। परिमल के सदस्य बड़े कोमल, कलावादी और मधुभाषी थे। इनसे अलग हम लोग थे, सन 60 के बाद के लेखक जो अपनी तरह से नई जमीन तोड़ रहे थे। मेरा साथ इन्हीं का था। वैसे मार्कण्डेय, अमरकांत और शेखर जोशी हमारे बीच भी मान्य थे। ये लिबरल सोच रखते थ। फिर भी मुझे न किसी गुट में शामिल किया गया, न मैंने यह इच्छा रखी। अकवितावादियों के बीच रहकर मैं ऐस आंदोलनां का हश्र देख चुकी थी। सन 1970 से 2000 तक क दौर में वरिष्ठ और कनिष्ठ रचनाकारों में परस्पर संवाद रहता था। मार्कण्डेय

जी के यहां और हमारे घर पर बाकायदा गोष्ठियां होतीं, जिनमें नई रचनाएं पढ़ी जातीं और उनके गुणदोषों पर विचार होता। मेरे पहले उपन्यास बेघर के प्रारंभिक पृष्ठ मार्कण्डेय जी की गोष्ठी में ही सुने गए। इसी तरह अमरकांत जी की कहानी आकाशचारी के कुछ पृष्ठ हमारे घर की गोष्ठी में सुने गए। ज्ञान की कहानी घंटा पर व्यापक चर्चा, जहां चार दोस्त बैठे, वहीं हुई। वह बड़ा रचनात्मक दौर था। हम सब लिखने की ललक से लबालब भरे हुए थे। पुराने दौर के और आजकल के लेखकों में एक अंतर तो बहुत साफ है कि आज लेखकों के बीच संवाद कम है। कुछ तो जीवन की आपाधापी जगह नहीं छोड़ती। कुछ लेखक तुनकमिजाज होते जा रहे। कमेंट या आलोचना कोई नहीं झेल पाता। सोशल मीडिया के इस दौर में सब लाइक वाला टिक चाहते हैं। हर युग का अपना एक मिजाज होता है।

— **आप तो अनेक शहरों में रही हैं। हर जगह का साहित्यिक परिवेश महसूस किया है, लेकिन उन अनेक शहरों में आपको कौन सा शहर ज्यादा करीब लगता है?**

— बहुत स्पष्ट ही बात है। अनेक शहरों से होते हुए 1970 में इलाहाबाद आकर बस जाना हमारे जीवन की सबसे महत्वपूर्ण मंजिल रही। सिर्फ यह नहीं कि इस शहर ने हमें आजीविका प्रदान की। इसने हमें सामान्यता का सौंदर्यशास्त्र, स्वाभिमान का वर्चस्व और एकाग्रता का उन्मेष सिखाया। न जाने लोग इलाहाबाद कैसे छोड़कर चले जाते हैं। यह शहर नहीं, एक शऊर है। यहां शोध, बोध और अर्थ है। यहां निजता का सम्मान है, रचनाधर्मिता की सार्थकता है। इस शहर के बड़े से बड़े रचनाकार और छोटे से छोटे रचनाप्रेमी में ये सब विशेषताएं अगर मुझे लगातार विस्मित, प्रभावित और प्रेरित करती हैं तो इसमें विचित्र कुछ भी नहीं है। मेरा यह विस्मय अभी तक बना हुआ है कि जिन शीर्ष रचनाकारों को पुस्तकों के पन्नों में पढ़ा, वे यहां कितनी सहजता से न सिर्फ मिले, वरन पथ के साथी बनते चले गए। फिराक साहब, पंत जी, महादेवी जी, अश्क जी, इलाचंद्र जोशी जी, अमरकांत जी, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, शांति मेहरोत्रा, गोपीकृष्ण गोपेश जी..... स्मृतियों की यह श्रृंखला बहुत लंबी है। इसी शहर में हमारे परिवार में दो शिशु आए। यहीं नौकरी मिली। यहीं किस्तों पर सही, घर और घर का कुछ साज सामान आया। यहीं रहकर दो दर्जन किताबें लिखीं गईं।

— **हिंदी लेखकों का प्रकाशकों के साथ एक अजीब सा रिश्ता रहा है। आपका अपने प्रकाशकों के साथ कैसा अनुभव रहा है? किताबों की रॉयल्टी को लेकर विवाद तो आपने भी देखे–सुने होंगे ही?**

— देखिए यह रिश्ता सुखद और दुखद दोनों होता है। लेखक और प्रकाशक दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे होते हैं। एक के बिना दूसरा बेरोजगार होता है। यह बात दोनों ही जानते हैं। मैं तो जाने कब से कब तक लाकभारती के प्रकाशक दिनेश ग्रावर को यह चुनौती देती रही कि मैं एक किताब लिखने वाली हूं– मेरे प्रकाशक। वे कभी नहीं घबराए। बड़ी दिलेरी स हर बार कहा– लिखिए, मैं छापूंगा।

यह कौन नहीं जानता है कि लेखक रचना लिखकर अपने अहम के शिखर पर होता है। अगर 20 दोस्त भी उसकी वाह वाह कर दें, लेखक अपने को सुपरहिट समझता है। 20 साल प्रिंटिंग प्रेस चलाकर हम यह समझे कि पहली 500 प्रतियां बिकने पर तो प्रकाशक की केवल लागत वसूल हाती है। उसके बाद की बिक्री पर वह रॉयल्टी दने की सोच सकता है। सन 2000 से 2200 या 3100 प्रतियों में किताब छपती थी, आज 300 प्रतियों का संस्करण छपता है। ऐसे में क्या रॉयल्टी बने और क्या बंटे? इस सबमें हिंद युग्म एक करिश्मे की तरह सामने आया है। केवल विनोद कुमार शुक्ल ही नहीं, उनके सभी लेखक रॉयल्टी को लेकर रॉयल महसूस कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि बाकी प्रकाशक रॉयल्टी नहीं देते। लेखक प्रकाशक के बीच ऐसा है "इधर तो जल्दी–जल्दी है, उधर आहिस्ता–आहिस्ता।" यह सिलसिला चलता रहा है और चलता रहेगा।

— **लेखन के क्षेत्र में बहुत बदलाव हो रहे हैं। भाषा और शिल्प को लेकर तेजी से बदलाव आया है।**

आपको क्या लगता है कि इस बदलाव से साहित्य आखिर गंभीर किस्म के लेखन की जगह कहां होगी?

– बहुत साफ–साफ दिखता है कि 21वीं शताब्दी में डिजिटल तकनीक न अभिव्यक्ति के नए द्वार खोल दिए हैं। इससे एक उम्मीद बनी है, लिखने वालों की झिझक खुली है क्योंकि सब लिखा हुआ दृष्टिगत हो रहा है। इसका आकर्षण प्रबल है। जो जितनी त्वरा से टाइप कर ले, वह उतना प्रमुखता से रच सकता है स्वयं को। इसका नुकसान यह है कि साहित्य अब कालजयी से हटकर कालक्षयी की श्रेणी से फिसल रहा है। वैसे मनोरंजन के लिए बुरा नहीं है। युवा वर्ग अपनी भूख, प्यास, शरारत, बदमाशी सब भूलकर सारे दिन मोबाइल या लैपटॉप पर टिप–टिप कर रहा है। लेकिन इसमें दो राय नहीं कि गंभीर साहित्य का दर्जा हमेशा ऊपर रहेगा। यह बात वे लेखक भी जानते हैं जो फटाफट लिखकर नाम कमा रहे हैं।

– **आप लंबे समय से लिख रही हैं। कभी आपका मन लेखन से ऊबा? आपको क्या लगता है कि लेखन से समाज में कितना बदलाव लाया जा सकता है?**

– देखिए, लेखनगत सरोकार मेरे अंदर कभी निष्क्रिय या निस्पंद नहीं हुए। लेखन से मेरा मन कभी नहीं ऊबा या उचटा। जीवन जगत की हर करवट, हर हरकत मेरे अंदर सैकड़ों सवाल छोड़ती है। और हां, लेखन से समाज में बदलाव होते हैं। इसमें कोई संदेह ही नहीं है। समाज में बदलाव लेखक और विचारक ही लाएगा, यह मेरा पक्का यकीन है। लेखन से तमाम बदलाव हुए हैं। इसके अनेक उदाहरण हैं।

– **आजकल लेखन कार्यशालाओं का बड़ा चलन है। क्या ऐसी कार्यशालाओं से कोई लेखक बन सकता है?**

– यह बात समझने योग्य है कि हर कला एक कौशल मांगती है लेकिन यह भी जान लेना जरूरी है कार्यशालाएं केवल लेखन का व्याकरण ही सिखा सकती हैं। जब तक लेखक के अंदर कल्पना और यथार्थ का मिला–जुला रस नहीं होगा, वह क्या लिखेगा। असली लेखक तो कहीं से भी चिंगारी बटोर लेता है।

– **ये बताइए कि आप इन दिनों क्या लिख रही हैं? नए लेखकों को कोई संदेश देना चाहेंगी?**

– कई बरसों से एक उपन्यास मन में फड़फड़ा रहा है। अभी कुछ ही पन्ने लिखे हैं। हां, नए लेखकों के हौसले देखकर प्रभावित होती हूं पर उनकी तैयारी देखकर निराशा होती है। आप जब तक अपने और विश्व के दिग्गज लेखकों की रचनाएं नहीं पढ़ेंगे, शुरुआत कैसे करेंगे? लेखन में नकल तो नहीं करनी लेकिन भाषा शैली, सरोकार, चेतना आदि कुछ तो ग्रहण करनी ही होगी। लेखन जो भी हो, गंभीर हो। नए लेखकों को समाज के मन में तभी जगह मिलेगी।

पता : एम 1204, सरगम अपार्ट., कुर्सी रोड, जानकीपुरम सेक्टर–जे (विस्तार), लखनऊ–226026
मो. : 9415225285

बदलते रिश्ते

❑ प्रतिभा मिश्रा

अचानक से कुत्ते के रोने की आवाज सुनकर नींद टूट गयी। एक अजीब सी बेचैनी होने लगी थी। लाइट जला कर समय देखा तो रात के दो बज रहे थे। कुत्ते का रोना वह भी घर के सामने बड़ा बुरा लग रहा था। सुनती भी आ रही हूँ बचपन से कि किसी की मौत की खबर सुननी पड़ती है जब कुत्ता रोता है या कुछ अनिष्ट होता है। उठ कर घड़े से एक ग्लास ठंडा पानी पीती हूँ फिर लाइट बुझा कर सोने का प्रयास करने लगती हूँ। यहां क्वार्टर में अकेली होने से भी थोड़ा भय सा महसूस करती हूँ। हालांकि सभी शिक्षक स्टाफ के क्वार्टर सटे हुए ही बने हैं और डर भी नहीं क्योंकि चौकीदार रात भर पहरे पर रहता है। नौकरी के कारण घर–परिवार से दूर रहना पड़ रहा है।

वैसे भी कल तो शनिवार है। घर जाना ही है। हर हफ्ते हम तीन शिक्षिकाएं जिनका शहर पास पड़ता है, चले जाते हैं और इतवार की शाम वापस आ जाते हैं।

जाने कब गहरी नींद के आगोश में समा गई, पता ही नहीं चला। सुबह उठ कर रात का भय भी जाता रहा। सारा दिन स्कूल की व्यस्तता में बीत गया। शाम चार बजे ट्रेन पकड़नी थी। हम तीनों जल्दी जल्दी स्टेशन के लिए रवाना हो गये थे। स्टेशन पहुँच कर राहत मिली कि ट्रेन बीस मिनट लेट है। हमने चैन की सांस ली और वेटिंग रूम के बाहर बेंच पर बैठ गए। तभी अर्चना बोली अरे यार! रात को इतनी जोर–जोर से कुत्ता रो रहा था कि ठीक से सो भी नहीं पाई। लक्ष्मी और मैंने भी उसकी हां में हां मिलाते हुए कहा हां–हां बहुत ही बुरी तरह रो रहा था।

इसी बीच मिस्टर पाठक सामने आकर खड़े हो गये। वे हमारे स्कूल में नहीं थे। बॉयज स्कूल में व्याख्याता थे और अप–डाउन किया करते थे। चूंकि वे भी हमारे शहर के थे और पूर्व परिचित भी थे। हमने नमस्कार किया फिर अचानक मेरी ओर देखते हुए बोले–आपके मम्मी–पापा तो आपके ननिहाल गए हैं कल। आपको पता है या नहीं, कल आपके नाना का स्वर्गवास हो गया। यह सुनते ही मैं एक क्षण को सुन्न रह गयी फिर मैंने उनसे पूछा तो बोले कि कल ही स्टेशन पर उनको बैठे देखा तो मालूम पड़ा शायद उनको अटैक आया

था। आगे कुछ बात करती इतने में ट्रेन आने का संकेत हो चुका था और हम तीनों खड़े हो गये थे। पाठक जी भी किसी को पुकारते हुए आगे बढ़ गए थे।

ट्रेन में बैठते ही मेरे आंसू थमने का नाम नहीं ले रहे थे और दोनों सहेलियां ढांढस देने के सिवा कर ही क्या सकती थीं। बार–बार वह दृश्य आंखों के सामने तैर रहे थे जब बहुत लम्बे अरसे बाद मामा के यहां नाना–नानी जयपुर आए थे और मुझे पता चला तो मैं खुद को रोक ही नहीं पाई थी जयपुर जाने से। विवाह के बाद मेरा पितृपक्ष से नाता ही टूट चुका था क्यांकि मैंने माता–पिता की रजा के बिना यह विवाह कर लिया था। ननिहाल से भी टूट गया था मगर बचपन और जवानी का एक बड़ा हिस्सा ननिहाल से जुड़ा होने से बहुत याद आती थी वहां की मुझे।

जयपुर जब गयी तो ढेर सारी शॉपिंग नाना–नानी के लिए की। आठ साल के लम्बे अरसे बाद उनसे मिलना जो हो रहा था। वहां पहुंची और सबसे पहले मेरी मामी ने बैग खुलवाकर देखा था। उसमें नानी की दो साड़ियां, दो लाल इमली के कंबल दोनों के लिए, नाना की शर्ट का बहुत ही अच्छा कपड़ा और छोट–मोटे सामान थे जिसमें से एक साड़ी, एक कम्बल कुछ ड्रायफ्रूट मामी ने अलग निकालते हुए कहा था– अरे अब बुढ़ापे में एक साड़ी ही ठीक है। कम्बल भी दो का क्या करेंगे? बोलते हुए सामान समेट कर बेशर्मी की हंसी हंसते हुए खुद ने हड़प लिए थ। मामी–मामा दोनों कमाते थे। पैसे की कोई कमी नहीं थी। दो दिन में ही समझ में आ गया था कि वे जल्दी ही वापस गांव जाने वाले हैं।

सुबह से रंग लगाने और पकवान खाने रिश्तेदार, गांव के लोग आ रहे थे। आंगन में भीड़ भाड़ थी और मैं कमरे में बैठी चुपचाप देख रही थी। तभी बाहर गली में होली गाते हुए लोग बैलगाड़ी में निकले और घर के सामने आते ही गाना–बजाना बंद करके आगे बढ़ गए। मुझे याद आया जिस घर में पहली होली मृतक की होती है वहां से श्रद्धांजलि देने के लिए सब कुछ बंद करके निकलते हैं यहां तक कि शादी ब्याह भी किसी के यहां होता है तो तेरह दिन तक ढोलक नहीं बजती है।

नानी की सूनी आंखें, उदास चेहरा और भयभीत सा रहना बिना कहे ही सब समझा गया था। नाना की नकली हंसी भी मुझसे छिपी नहीं थी। उनस अकेले में बात भी नहीं कर पाई थी हर वक्त मामी या उनकी बेटी घेरे रहते थे। शर्ट का कपड़ा दिया तो नाना ने कहा था बिटिया तुम्हारो हम नाय ले सकत हैं पाप लगिहै हमें। तब मैंने उन्हें समझाते हुए कहा था यह सब कुछ मेरी कमाई से खरीदा है इसलिए आप ना मत करें मुझे अच्छा नहीं लगेगा।

तभी लक्ष्मी न झकझोरते हुए कहा उतरो भाई स्टेशन आ गया। मैं चौंक कर हड़बड़ा के उतरी मगर मन तो अनमना सा हो रहा था। घर पहुँच कर काम में डूब गई। पति देव को बताया तो ये सिर्फ इतना भर बोले बहुत बुरा हुआ, भगवान उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें।

स्कूल वापस जब दो दिन बाद पहुंची तो मामा का खत मिला कि नानाजी नहीं रहे। फलां–फलां तारीख को तेरहवीं है। तुम आना चाहा ता आ सकती हो क्योंकि तुम्हारी मां और मामी तो पहले पहुँच जायेंगी और मैं बाद में दो दिन पहले जाऊंगा मगर शायद तुम्हारे पिता जी तुम्हारा आना बर्दाश्त नहीं करेंगे। अच्छा हो, न ही आओ। फालतू में वहां हंगामा हो, हम नहीं चाहते हैं।

पत्र पढ़ कर मुझे लगा कि सच ही तो लिखा है। गांव में सारी जाति–बिरादरी वाले और रिश्तेदार एकत्रित होंगे। वहां मुझे देखकर अनगिनत सवालिया निगाहं और तंज भी कसे जायेंगे। यही सब सोच कर मन में फैसला कर लिया कि नहीं जाऊंगी।

बाद में मामा का खत आया था कि उस दिन तुम्हारे नाना पटियाली (कस्बा जो गांव से छः कोस दूर पड़ता था) गये थे और वह शर्ट का कपड़ा जो तुमने उन्हें दिया था, उसे सिलवाने के लिए डाल कर आये थे। लौट कर नानी से पानी मांगा और अटैक आ गया था। बहुत रोई थी पत्र पढ़ कर कि मेरे द्वारा दिए गये कपड़े की शर्ट भी नहीं पहन सके थे।

चार महीने बाद पहली होली थी और पिताजी नहीं जा रहे थे। मां जा रही थी अकेली। मैंने मामा से पूछा था पत्र लिख कर कि एक बार तो उस ननिहाल की देहरी पर आने

का मेरा हक़ बनता है। मैं आना चाहती हूँ। उन्होंने हामी भर दी थी कि मेरे साथ चलना। तुम्हारी मामी तो पहले ही चली जायेंगी।

गाँव उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में पड़ता था इसलिए अकेली जाना संभव भी नहीं था ता मामा के साथ ही जाने का निश्चय कर लिया था। पटियाली स्टेशन पर हम उतरते थे और एक घने पीपल के नीचे हमारे छोटे मामा बैलगाड़ी लिए हमारा इंतजार किया करते थे। पूरा रास्ता रेतीला कच्ची पगडंडी वाला हुआ करता था। मां सामान के साथ बैलगाड़ी में बैठती। मामा से बतियातीं और हम नीचे उतर कर कूद फांद करते खेलते चलते थे। वह छः कोस का सफर मिनटों में कट जाता था।

गाँव के बाहर ही खलिहान होते थे जहाँ गेहूं निकालने के लिए बैलों को पुरालों पर घुमाया जाता और फिर भूसा उड़ा कर गेहूं एकत्रित किया जाता था। खलिहान में सबसे पहले बैलगाड़ी से आगे–आगे चल कर मैं पहुंचती थी और वहीं नाना खड़े होकर हमारा इंतजार करते मिलते। उनके चेहरे की वह निश्छल मुस्कान और मुझे प्यार से चिढ़ाने का जुमला आय गयीं हमारी कल्लो परी नई सेर अनाज खाइबे को और मैं उन्हें मुक्के मारने लगती थी कि और कहो तो वापस चली जाऊंगी तब हंसते हुए वो मुझे सर पर हाथ फेर कर कहते–अरे बुरा मत मानो लली। हम चिढ़ाइबे के ताईं कह रहे हैं, हमाई तो बिटिया मैदे जैसी गोरी और फूल सुंघनी है। एक दो रोटी ही खावत है भैया। ऐसे हमारा मिलना होता था।

पटियाली स्टेशन पर जैसे ही गाड़ी रुकी। मैंने पीपल पर नजर डाली तो कोई बैलगाड़ी खड़ी नहीं दिखाई दी थी। मामा से पूछा कि गाँव कैसे जायेंगे। कोई लेने भी नहीं आया, तो हंसते हुए बोले किस जमाने की बात कर रही हो। अब तो गाँव तक पक्की सड़क बन गयी है और टैम्पो चलने लगे हैं। अब भूल जाओ सब पुराना। गाँव में भी बिजली, डाकघर, छोटा अस्पताल सब बन गए हैं।

जयपुर जब गयी तो ढेर सारी शॉपिंग नाना–नानी के लिए की आठ साल के लम्बे अरसे बाद उनसे मिलना जो हो रहा था। वहां पहुंची और सबसे पहले मेरी मामी ने बैग खुलवाकर देखा था। उसमें नानी की दो साड़ियां, दो लाल इमली के कंबल दोनों के लिए, नाना की शर्ट का बहुत ही अच्छा कपड़ा और छोटे–मोटे सामान थे जिसमें से एक साड़ी, एक कम्बल कुछ ड्रायफ्रूट मामी ने अलग निकालते हुए कहा था अरे अब बुढ़ापे में एक साड़ी ही ठीक है। कम्बल भी दो का क्या करेंगे? बोलते हुए सामान समेट कर बेशर्मी की हंसी हंसते हुए खुद ने हड़प लिए थे। मामी–मामा दोनों कमाते थे पैसे की कोई कमी नहीं थी। दो दिन में ही समझ में आ गया था कि वे जल्दी ही वापस गांव जाने वाले हैं।

तभी टैम्पो वाले की आवाज सुनाई दी भैया कहां की सवारी है? नधोली, बीरमपुर, नरहटी कहां जाओगे। मामा बैग उठा कर टैम्पो की तरफ बढ़ गए और मैं भी सीट पर जाकर बैठ गयी और एक नजर उस बूढ़े पीपल पर डाली तो आंखें भर आईं उसे देखकर। न जाने कितने साल इसी के नीचे बैलगाड़ी खड़ी हमारा इंतजार करती थी, जिसे बड़े मामा खड़े हमारी ट्रेन की राह तका करते थे। हम भी मामा और बैलगाड़ी की झलक पाने को बेचैन रहा करते थे।

रास्ते से और भी सवारियां टैम्पो में ठूंस दी गयीं थीं। कुछ मामा के परिचित गाँव के लोग भी मिले और वे चढ़–बढ़ कर मामा से नाना की तेरहवीं की प्रशंसा करने लगे थे। भाई परमोद (प्रमोद) तुमने तो जोरदार तेरहवीं करी अपने बाप की। गाँव के लोग सब आज लों तारीफ करत–करत अघात नहीं। भैया बेटा हो तो तुमई साई। मामा भी सुन–सुन कर मानों गर्व से भर उठे थे। और मेरे सामने नाना का वह नकली मुस्कुराहट वाला चेहरा घूम रहा था और वो सूनी उदास आंखें जिनमें दर्द के सिवा कुछ नहीं था।

घर के दरवाजे पर टैम्पो रुकते ही भीतर से रोने की जोर–जोर से आवाजें आने लगीं थीं। पता था होली पर सारे रिश्तेदार आयेंगे। बाहर से मकान का वही नक्शा था देख कर राहत मिली कि कुछ तो है जो नहीं बदला। बड़ा सा लोहे का दरवाजा देख कर लगा मानों अंदर

से नाना कह रहे हैं कि जे दरवाजा कौन खुलो छोड़ गओ? हमाई नाक में दम कर दई है। हम जामे बंद करत–करत परेसान हैं।

भीतर गई तो औरतों का जमघट लगा था। मुझे मामा के साथ देखा तो भौंचक होकर देखने लगीं। एक–दो खुसुर फुसुर भी सुनाई दी। जे को है? तभी मामी तमक कर बोलीं को है? तुम नाय जानो इन्हें? सुशीला जिज्जी की सुआ हैं। इतने बरस बाद आई हैं। मैं सबकी अनसुनी करके नानी के पास जाकर बैठ गयी थी। उन्हें सांत्वना क्या देती, मेरा मन तो नाना को ढूंढ रहा था मगर वो वहां नहीं थे। तभी बड़ी मामी मेरे कंधे पर हाथ रखकर धीरे से बोलीं। बिटिया भीतर चलो इतनी दूर से आई हो। तनिक कछु चाय–पानी कर लियो। जे तो पूरे दिन एसोई चलिहे। मैं मामी के साथ भीतर कुठरिया में गई तो फूट–फूट कर रो पड़ी थी। कभी इसी कुठरिया में मेरा बचपन छुट्टियों में गुजरा था। भाई धमाचौकड़ी करते तो बाहर भगा कर इसका दरवाजा बंद करके मामा की लड़की और मैं कपड़े की गुड़िया बनाया करते थे और दुनिया भर की बातें किया करते थे।

मामी पानी का ग्लास लेकर आ गई थीं। फिर गिलास थमाते हुए बोलीं बताशे लाई हो बिटिया? मैंने हामी में सर हिलाते हुए बताशे की पोटली उनके हाथों में रख दी थी। मुझे याद था कि बहन–बेटियां होली पर शोक खत्म करने आती हैं तो बताशे लाती हैं जो सबका मुंह मीठा करवा कर शोक की समाप्ति की जाती है। सोच रही थी कि क्या मुंह मीठा हो जाने के बाद जाने वाले की स्मृतियां भी खत्म हो जायेंगी।

दूसरे दिन खीर खूब पकवान घर में बन रहे थे। नाना की पसंद के भी। औरतें मिल–जुल कर सब बनाने में लगीं थीं। मैंने भी मदद करनी चाही तो मुझे छोटी मामी ने तिरस्कार पूर्ण शब्दां में साफ़ मना कर दिया था। तुम बाहर मत निकलो। तुमने तो शादी अपनी मर्जी से करके सब खत्म कर लिया है। औरतें देखेंगी तो दस सवाल पूछेंगी। मामी मुझे अनदेखा करके बाहर चली गई थीं। नानी भी सबके सामने अनजान सी बनी घूम रही थीं।

सुबह से रंग लगाने और पकवान खाने रिश्तेदार, गाँव के लोग आ रहे थे। आंगन में भीड़ भाड़ थी और मैं कमरे में बैठी चुपचाप देख रही थी। तभी बाहर गली में होली गाते हुए लोग बैलगाड़ी में निकले और घर के सामने आते ही गाना–बजाना बंद करके आगे बढ़ गए। मुझे याद आया जिस घर में पहली होली मृतक की होती है वहां से श्रद्धांजलि देने के लिए सब कुछ बंद करके निकलते हैं यहां तक कि शादी ब्याह भी किसी के यहां होता है तो तेरह दिन तक ढोलक नहीं बजती है।

शाम तक सब खत्म सा होने लगा था। सवेरे जल्दी ही मुझे और छोटे मामा को वापस लौटना था। रात भर पास–पास खटिया पर मैं और नानी लेटे रहे आंसू बहते रहे दोनों के मगर कहने को जैसे कुछ बात ही नहीं बची थी। बचपन में नानी के साथ एक खाट पर सोने का सिर्फ मेरा अधिकार होता था। आज समय की दूरी और परिस्थितियों ने मानो मुंह पर भी ताले लगा दिए थे।

मुंह अंधेरे ही मैं तैयार होकर नानी के पास बाहर आई ता अजीब उदासी उनके चहरे पर थी। मुझ निर्विकार रूप से गले लगाया और मैं बिना पीछे देखे उस दरवाजे से जो निकली तो आजतक कभी नहीं लौट पाई। यहां तक कि नानी के मरने तक की खबर मुझे मेरे मामा ने नहीं दी थी।

बहुत समय बाद जब जयपुर जाना हुआ और खड़े–खड़े मामा से मिलने गई तो ड्रॉइंग रूम में नानी–नाना का बड़ा सा रंगीन फोटो जिस पर चंदन की माला झूल रही थी और उसके नीचे एक लकड़ी के पटिये पर अगरबत्ती स्टैंड में मामी घंटी बजाती अगरबत्ती जला कर मुझे देख कर बोलीं मैं तो लाली सुबह–शाम माताजी पिताजी को अगरबत्ती लगाती हूं। देख उनके आशीर्वाद से ही आज इतना सब कुछ है।

मैंने मन ही मन उस दिन की याद आ गई जब नानी की एक साड़ी और कम्बल तक इसी मामी ने हड़प लिया था। और आज दिखावे के लिए इतना सब कुछ। घृणा से मेरा मन भर उठा। उसके बाद मैं कभी नहीं गई और न मिली कभी उनसे। समय के साथ बदलते रिश्ते और दिखावे समझ से परे थे। ◆

पता : 206, सच्चिदानंद नगर, पुराने आर.टी.ओ. के
सामने, केशरबाग रोड, इन्दौर (म.प्र.) 452001
मो. : 9826166392

अनमोल मोती

❑ वंदना संतोष पंवार

आज सुबह से ही बहुत उमस हो रही थी। बारिश है कि बरसने का नाम ही नहीं ले रही है। बड़ी मुश्किल से बच्चों को स्कूल और पतिदेव को ऑफिस के लिए टिफिन तैयार करके दिया और उनके जाते ही एक निस्तब्धता सी पूरे घर में समा जाती है। दरवाजा बंद करके गैलरी में बाय–बाय करके वापस भीतर जाने का मन नहीं हुआ, वहीं कुर्सी खसका कर बैठ गयी। सामने स्कूल के बच्चों की आवाजाही ऑटो बस आदि रुकते–चलते दिखाई पड़ रहे थे। सत्र की शुरुआत होने से सब कुछ नया–नया रंगबिरंगा दिख रहा था। शोरगुल भी हो रहा था कि अचानक मुझे मल्टी के गार्ड की पत्नी अनीता दिखाई दी, वह गेट से भीतर तेजी से चलकर आ रही थी। लगता है बेटी को स्कूल के ऑटो में बिठा कर लौटी है। अनीता का छोटा सा क्वार्टर गेट के पास ही है, जहां वह अपने पति और बेटी के साथ रहती है। मल्टी के कुछ घरों में वो झाड़ू–पोंछे का काम भी करती है ताकि घर का खर्चा गृहस्थी की गाड़ी सुचारु रूप से चलती रहे।

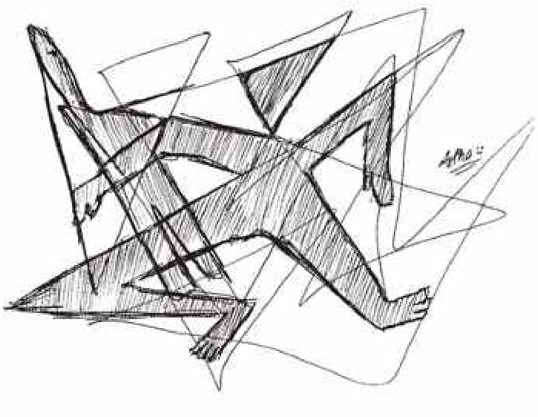

अनीता से मेरा परिचय उसके क्वार्टर के बाहर ही हुआ था। मैं किसी काम से बाहर जा रही थी। जल्दबाजी में अनीता से टकरा गई थी। फिर उसका स्वर सुना माफ करुंदिया गलती हो गई। मैंने भी हंसते हुए उस पर एक नजर डाली और कोई बात नहीं कह कर चली गई थी। उसका वह भोला चेहरा और मुस्कान मेरे दिल में मानों घर कर गई थी। धीरे–धीरे आते जाते उससे बातें होने लगी थीं और मैंने उसे अपने घर पर झाड़ू–पोंछे के लिए रख लिया था। उसकी बिटिया भी बहुत प्यारी थी, मुझे उससे बातें करना बहुत सुकून देता था। दोपहर में जब पूरा घर खाली हो जाता था तब अनीता फटाफट मेरे यहां काम करके दूसरे माले, की मिसेज चंदवानी के घर चली जाती थी और अपनी बेटी को मेरे पास छोड़ जाती थी कि मैं उसे कुछ पढ़ा दिया करूं। मेरा भी लगाव उन दोनों के प्रति बढ़ता ही जाता था। मैं जब तब मौका निकाल कर अनीता से बातें करके अपना मन हल्का कर लेती थी।

उस दिन भी गैलरी में खड़ी थी कि तेज बारिश शुरू हो गई मैंने देखा गेट से भीगता हुआ कोई बुजर्ग सा व्यक्ति कंधे पर बड़ा सा झोला लटकाए हुए भीतर आया और अनीता का दरवाजा

खटखटाने लगा। उसका झोला भीग गया था तो उसमें से मुझे सब्जियां अस्पष्ट सी दिखाई दे रहीं थीं। इतने में अनीता ने उनके कंधे से झोला उतारा और हंसते हुए भीतर जाकर एक टॉवेल लाकर दिया और फिर भीतर ले गई। मैं भी भीतर आकर इजी चेयर पर बैठ कर सोचने लगी कि कौन हो सकता है? जिसे देख कर अनीता के चेहरे पर एक खुशी और चमक आगई थी? सोचते–सोचते कब नींद लग गई, पता ही नहीं चला कि अचानक दरवाजे की बेल बजने से झटके से नींद खुल गई। दरवाजा खोला तो अनीता हाथ मे एक टोकरी में बहुत सारी सब्जियां लेकर खड़ी मुस्कुरा रही थी। मैंने एक प्रश्न वाचक दृष्टि उस पर डाली तो भीतर आकर उसने वो टोकरी डायनिंग टेबल पर रखते हुए कहा कि मेरे पिताजी आये हैं वो सब्जी का ठेला लगाते हैं मेरे लिए ताजी–ताजी ढेर सारी सब्जियां लेकर आये तो मेरे कूं लगा आपको भी देकर आऊं और वो रख कर तेजी से यह कहती हुई कि पिताजी के लिए चाय बनानी है, चलती हूँ चली गई। मैंने दरवाजा बंद करके सारी सब्जियां फ्रिज में रख दी और चाय बना कर कप हाथ में लेकर फिर से गैलरी में आकर खड़ी हो गयी। सामने देखा तो अनीता के पिताजी उसके क्वार्टर के बाहर देहरी पर बैठे मटर और हरे चने छील रहे थे। देखते ही मेरे दिल में एक हूक सी उठी और आंखों में आँसू आ गये। उनका वात्सल्य और बेटी के प्रति प्यार देख कर मुझे अपना अतीत याद आने लगा।

और फिर, मेरी शादी, आश्विन के साथ हुई दहेज में मुझे कुछ कपड़े और गहने देने की बात पिताजी ने कही मगर मैंने मना कर दिया था केवल मां की साड़ियां और उनके कंगन मैंने लिए और पति के साथ यहां आ गई थी। पिताजी न कभी आए न मैं फिर वहां गई। समय–समय पर नौकर आकर उपहार वार त्योहार दे जाता था बच्चों के लिए, कभी अश्विन के लिए, कभी सभी के लिए मगर पिताजी अपने हाथों से लेकर कभी नहीं आए। मैं जानती थी कि मेरा विवाह उन्होंने मन से कभी स्वीकार नहीं किया था। और शान–शौकत और धन की दीवार पिता के प्रेम से भी ऊँची खड़ी थी।

दस वर्ष की थी कि माँ मुझे अकेला छोड़ कर चली गई थी। पिता बड़े व्यवसायी होने के कारण बहुत व्यस्त रहा करते थे। उन्होंने मुझे कोई भी कमी कभी नहीं महसूस होने दी। नौकर–चाकर, स्कूल कपड़े हर सुविधा– थी। मगर प्यार वो कहाँ ढूंढती, उसकी कमी खलती थी। पिता की व्यस्तता के कारण मैं कभी उनका प्यार नहीं पा सकी। नौकरों के बच्चो और नौकरानियों से बातचीत भी करना सख्त मना था मगर जब पिताजी बाहर जाते तो उनके साथ ही मुझे बातचीत करना खेलना बहुत अच्छा लगता था । ऐसे ही उम्र का बचपन का पड़ाव खत्म हो गया था और जवानी में कदम रख चुकी थी। कॉलेज में आते ही शहर के सबसे बड़े कॉलेज में मुझे दाखिला दिलवाया गया था। वहां भी मैं बस चुपचाप अपनी पढ़ाई पर ध्यान देती। सारे पैसे वाले घरों के छात्र–छात्राएं, मौज–मस्ती करने और मां–बाप का पैसा, उड़ाने वहां आते थे। मैं कभी उनमें शामिल नहीं हो सकी। उन्हीं दिनों से हिन्दी के प्रोफेसर मि. अश्विन से कई बार मुझे कुछ समझने का अवसर मिला और वे मुझसे बहुत प्रभावित भी रहते और ये सिलसिला कब प्यार में बदल गया, पता ही नहीं चला मुझे।

मेरी पढ़ाई पूरी होने के साथ–साथ मेरे लिए मेरे पिता ने बड़े घरों के रिश्ते ढूंढने शुरू कर दिए थे। अश्विन, भी अब मेरा विवाह के बारे में निर्णय सुनना चाहते थे और मैं भी अब अश्विन के अलावा किसी और से विवाह नहीं कर सकती थी, चूंकि अश्विन एक मध्यमवर्गीय परिवार से थे और प्रोफेसरी के अलावा उनके कोई पुश्तैनी जायदाद या प्रॉपर्टी नहीं थी बस यही सोच कर मन ही मन पिताजी से बात करने में डरती थी। एक तरफ एश्वर्य और दूसरी तरफ प्यार जो मुझे अश्विन से मिला था और मेरी जिन्दगी का अभाव तथा शुष्कता मानों हरियाली में बदल गयी थी मगर पिता के प्यार से वंचित मन का एक हिस्सा मानो खाली ही रहा था। उस दिन अचानक पिताजी ने मुझे बुलवाया तो बड़ा आश्चर्य हुआ वरना वो फोन से ही मेरा हालचाल और पढ़ाई के बारे में पूछ लिया करते है। बहुत कम अवसर ऐसे आये कि हमारा आमना–सामना हुआ हो और हो भी जाता तो बस हिदायतें और रहन–सहन मर्यादा की सीख देकर बात खत्म हो जाती थी। मैं डरे मन से पिताजी के कमरे में जाकर खड़ी हो गयी

"आपने मुझे बुलाया? उन्होंने बिना मेरी ओर देखे ही फाइलें पलटते कहा हां मैंने तुम्हारे लिए एक लड़का देखा है। अमेरिका से पढ़ाई करके लौटा है और उसके पिता माने हुए बिजनेस मैन हैं, घर–बार नौकर–चाकर सब कुछ बहुत अच्छा है धनाढ्य लोग हैं। इकलौता बेटा है। तुम्हें वहाँ कोई तकलीफ नहीं होगी। कहते हुए उन्होंने एक फोटो टेबल पर रखते हुए कहा ये देख लेना वैसे मैं एक दो दिन में उन्हें सपरिवार घर पर बुलाने की सोच रहा हूँ ताकि आमने–सामने बातचीत भी हो सके।" मैं एकदम से हतप्रभ हो गई थी कि अचानक ये फैसला पिताजी कैसे सुना सकते हैं। अश्विन उनका क्या उनके पास तो सिर्फ मेहनत की कमाई और प्यार है जो इस सबसे बढ़कर है। मैने तत्काल निर्णय लिया कि अगर मैंने अभी ये बात यहीं स्पष्ट नहीं की तो बहुत देर हो जायेगी। मुझे खड़ी देखकर पिताजी ने एक निगाह मुझ पर डालते हुए कहा कुछ कहना चाहती हो?" मैने धीरे से सर हिलाया ओर फिर मैं धाराप्रवाह बोलती चली गई एक सांस में मैंने अपना फैसला पिताजी को सुना दिया था और अंत से यह स्पष्ट भी कर दिया था कि मुझे धन नहीं प्यार चाहिए क्योंकि इसी धन को कमाने में मैं आपके प्यार से हमेशा वंचित रही हूँ। क्या फायदा ऐसे पैसों का जो कभी भी अपने पिता का सर पर हाथ न दे सका, कभी मुझे आपके साथ मिल बैठ कर हंसा न सका?

मेरी बात सुनकर पिताजी सन्न रह गये थे। थोड़ी देर चुप्पी के बाद उन्होंने सिर्फ इतना भर कि कहा था कि ठीक है तुम अपनी इच्छा से यह निर्णय ले रही हो तो मुझे मंजूर है मगर याद रखना मैं कभी तुम्हारे घर से कोई वास्ता नहीं रखूंगा मतलब कभी–भी उस घर में पैर नहीं रखूंगा जहां गरीबी में मेरी बेटी रह कर जीवन काट रही होगी ओर वे वहां से यह कह कर कि कल दोपहर खाने पर उनको बुला लो मैं बात करना चाहता हूँ, चले गये थे।

और फिर, मेरी शादी, अश्विन के साथ हुई दहेज में मुझे कुछ कपड़े और गहने देने की बात पिताजी ने कही मगर मैंने मना कर दिया था केवल मां की साड़ियां और उनके कंगन मैंने लिए और पति के साथ यहां आ गई थी। पिताजी न कभी आए न मैं फिर वहां गई। समय–समय पर नौकर आकर उपहार वार त्योहार दे जाता था बच्चों के लिए कभी अश्विन के लिए, कभी सभी के लिए मगर पिताजी अपने हाथों से लेकर कभी नहीं आए। मैं जानती थी कि मेरा विवाह उन्होंने मन से कभी स्वीकार नहीं किया था। और शान–शौकत और धन की दीवार पिता के प्रेम से भी ऊँची खड़ी थी।

अचानक घड़ी के गजर से मेरी तंद्रा भंग हो गई। भीतर आकर टी.वी आन किया मगर फिर देखने की इच्छा ही नहीं हुई। रिमोट से बार–बार चैनल बदलने के बाद उसे भी बंद करके इजी चेयर पर माथा टिका कर बैठी मगर रह–रह कर पिछली स्मृतियां मानों दिल–दिमाग के दरवाजे खटखटा रही थीं। आंखों की कोर से आंसू बह रहे थे । तभी किसी ने डोर बेल बजाई और मैंने आंसू पोंछ कर दरवाजा खोला तो सामने अनीता की बेटी अपने हाथों में दो पॉलीथिन लेकर खड़ी थी। मैं कुछ कहती उसके पहले ही वह बोली ये मेरी आई ने आपके फ्रिज में रखने को बोला है। मेरे आजोबा ने मटर के चनों को छील कर दाने निकाले, हैं, वो खराब हो जाएंगे इसलिए आप इसे फ्रिज में रख दो कहती हुई वो मेरे हाथों में थैलियां थमा का खेलने चली गई। मैंने दरवाजा बंद करके फ्रिज में जगह बनाई और उन थैलियों को रखते समय मेरे हाथों से उनकी गठान खुल गयी तो अचानक मेरी निगाह चमकते हरे–भरे मटर के दानों पर पड़ी वो मोतियों जैसे चमक रहे थे। मुझे लगा ये बेशकीमती हीरे–मोती ही हैं जिनमें एक पिता का भरपूर प्यार वात्सल्य चमक रहा है। एक गरीब पिता का अमूल्य प्यार अचानक फिर मेरी आंखों से धारा प्रवाह आँसू बहने लगे और मुझे लगा कि अनीता तो बहुत धनवान है जिसे पिता के प्यार की भरपूर दौलत मिली हैं। मैं उस समय खुद को बहुत बेबस और असहाय महसूस कर रही थी। मेरे पास सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं था और अनीता के पास कुछ नहीं होते हुए भी बहुत कुछ। तभी फिर डोर– बेल बजी और दरवाजा खोला तो खाना बनाने वाली बाई खड़ी थी। भीतर आते ही बोली– बाई! आज सब्जी में क्या बनाने का ? मैंने एक गहरी सांस लेते हुए कहा कि आज मटर की सब्जी–बनाना मीठी और प्यार भरी मटर और कहते हुए अनीता की थैली से मैंने कटोरे में दो–मुट्ठी दाने निकाल कर डाल दिए। बाई मेरा चेहरा ताकती हुई कटोरा उठा कर किचन में ले गई और मुझे लगा कि आज मैंने भी उस प्यार का एहसास कर लिया जो अनीता के पिता का मटर के दानों में समाया हुआ था। ◆

पता : 21, ऑटो नगर, ओल्ड एम.आय.डी.सी., भुसावल
रोड, जलगांव, महाराष्ट्र–425003
मो. :

अदृश्य टीले

❑ सुमन शेखर

"वह बहुत बुरी थी या उसका समय और उसके मन का घाव?" ठीक सामने खड़ी बिल्डिंग में रहे ऑफिस में जाने के पहले, सामने की टपरी पर चाय की पहली चुस्की लेते हुए मैंने पूछा। "तुम्हें क्या लगता है?"

कुछ देर वह लड़का चुप रहा। मैंने फिर से पूछा, उसने कहा–"हर बुरी बात को आप उसके मानसिक संतुलन और भावनात्मक लड़खड़ाहट से नहीं जोड़ सकते। बुरा, बुरा ही होता है भावनात्मक जड़ता थोड़ी देर बाद ठीक हो सकती है लेकिन......."

मैंने घड़ी देखी। "मुझे निकलना होगा। कल इस बारे में फिर से बात करेंगे।"

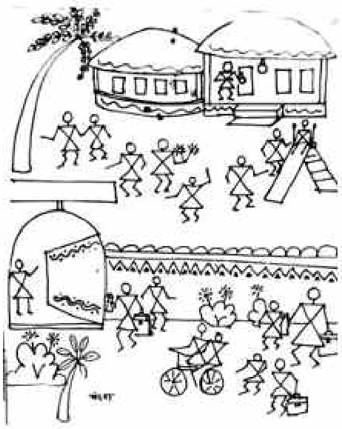

हालांकि मेरे पास समय था। मैं चाहता तो कुछ देर और रुक कर उससे बात कर सकता था। जिस तरह मैं उस लड़की को बहुत करीब मानता था, यह लड़का उस लड़के को।

बातें ज्यादा हो तो बहस की तरफ मुड़ जाती हैं। मैंने कुछ नहीं कहा और चलना ही मुनासिब समझकर थोड़ी दूरी पर खड़ी बाइक पर जा बैठा। आईने में इस लड़के की तरफ देखा जो उम्र में मुझसे काफी छोटा था और उस लड़के की जगह को शायद भरने के लिए आया था। यह लड़का मुझसे नाराज था। मुझसे नहीं, शायद अपने दोस्त से, जिसका कोई नाम नहीं है। हो भी तो कम से कम मुझे तो नहीं मालूम है। मैं जिस चीज को नहीं जानता, उसे स्वीकार भी नहीं करता हूँ। भगवान अपवाद हैं। लेकिन लड़के को मानना पड़ेगा क्योंकि उस लड़की का पता यही लड़का है, जो अब यहाँ नहीं रहता, उसके होने का अंदेशा लिए कोई और लड़का रहता है। मैं इस लड़के को भी नहीं जानता, इस जगह को जानता हूँ, इसलिए कह सकता हूँ कि इस लड़के को भी जानता हूँ।

मैं इससे बहस करना नहीं चाहता था। आईने में वह मेरी तरफ आता हुआ दिखा। 'चलता हूँ अब.....लेकिन....वह तो इधर मेरी तरफ ही आ रहा है!!' मन ने मन से संवाद किया।

मैं रुककर इंतजार करने लगा। मेरी नजर आईने पर लगातार बनी हुई थी। लड़का बहुत धीरे–धीर मेरे करीब आ रहा था। मैं उसके भाव को समझने की काशिश कर रहा था। उसके चेहरे पर उस खास भाव की सच्चाई दिखी, जिसका मुझे अंदेशा था। क्रूरता चेहरे से भाव की सच्चाई पी जाती है, इस लिहाज से वह मुझे बहुत साफ दिखा। मैं इंतजार कर रहा था कि

वह आए और मेरे काँधे पर हाथ रखे और मैं उसे झटक कर निकल जाऊं। थोड़ी देर में ही वह मेरे बिल्कुल पीछे खड़ा था। मेरे काँधे पर रखने के लिए उसने अपना दाहिना हाथ उठाया। उसका हाथ हवा में टिका हुआ था। मैं जाने क्यों उसके हाथ के बैठने का इंतजार करने लगा। इंतजार पूरा हुआ, बैठते ही झटके से पीछे की तरफ उसकी हथेली को मैं धक्का देकर निकल गया। हाथ हवा में घूम कर पास से गुजरते ऑटो में टकरा गया। मैंने आईने में देखा, वह अभी भी वही खड़ा है। उसकी देह उदास। चेहरा सवालिया। मौन। दयनीय। मैंन रुककर टपरी की तरफ देखा तो वह वहीं खड़ा मुझे देख रहा था। वह मेरे पास नहीं आ रहा था। तो फिर पीछे जो था, वो कौन था! मेरे पास शायद मेरा भ्रम था। मैंने लड़के की हथेली को धक्का नहीं दिया था!

"जरूरी नहीं कि किसी को अच्छा साबित करने के लिए किसी को बुरा बताने की जरूरत हो" बर्तन में खौलते हुए पानी में दूध गिराते हुए उसने कहा।

मैंने गर्दन हिला दी या शायद खुद ही हिल गई। मुझे यहाँ से जाना था, लेकिन नहीं जाना था। मुझे इससे बात नहीं करनी थी, लेकिन करनी थी। मेरे पैर वापस इसकी तरफ नहीं बढ़ने चाहिए, फिर भी बढ़ने थे। मुझे इससे आगे की बात जाननी थी, शायद नहीं जाननी थी।

मैंने बाइक स्टार्ट की और हैंडल खुद ही ऑफिस की तरफ मुड़ गया। मैं यह भी करना नहीं चाहता था। अनकही–अनसुनी बातों का बोझ मन पर बहुत बुरा प्रभाव डालता है। जितनी जल्दी हो सके, उसे खत्म कर देनी चाहिए। मैंने बाइक रोक दी और वापस उस लड़के के सामने रख स्टूल पर बैठ गया। लड़का चाय का दूसरा कप मरे सामने रख गया। इस दुकान पर ग्राहक के तौर पर आमतौर सिर्फ मैं ही नियमित आता हूं। पहले यहाँ भीड़ हुआ करती थी, शोर–शराबा हुआ करता था। कहीं मुंह में पानी भरकर दूर तक फेंकने वाले लोग, कहीं कांधे पर बैग टांगे दो–तीन लोग, स्टूल पर बैठकर अखबार पढ़ते कुछ बुजुर्ग, कुछ किस्से, कहीं तिरछी नजर से दबी आवाज में बॉस की बुराई तो कहीं किसी के छुपे हुए प्यार के चर्चे। एक हादसा सारी चीज अपने भीतर समा गया। हादसा!

थोड़ी देर दोनों चुप रहे। वह खड़ा ही चाय पी रहा था, उसकी देह सड़क की ओर और आँखें तिरछी मेरी तरफ, फिर आगे सड़क पर चल रहे लोगों की तरफ कि शायद किसी का पांव इधर को मुड़ जाए। दोनों चाय के साथ–साथ चुप्पी गटकते रहे। सामने धूल भरी बेंच पर एक बिल्ली आकर बैठ गई। काला और सफेद रंग का मिश्रण। उसने हम दोनों को खुलती, बंद होती आँखों से देखा। हम दोनों की आँखों ने उसको देखा। कहीं से गुजरते किसी और ने हम तीनों को देखा होगा। हम तीनों ने असल में किसी को नहीं दखा। हमने जमीन पर लोट–पोट होती अपनी आकृति को देखा।

चाय खत्म हुई। मैंने चुपचाप कप डस्टबिन में डाल दिया। उसने चुपचाप हाथ धोने के लिए पानी बढ़ाया।

"आप कुछ कहोगे नहीं !" उसने धीरज तोड़ते हुए कहा। जिसकी बांध बहुत बड़ी हो चुकी थी, टूटते ही भरभरा कर मेरे कान तक उसका झटका आया। मैंने एक लंबी साँस ली। अक्टूबर के महीने में भी सब कुछ चिलचिलाती धूप भरी दुपहरी सा शांत सन्नाटा ओढ़े हुए था। बिल्ली अब भी बैठी थी। लड़का अब भी खड़ा था। सामने ऑफिस का दरवाजा बंद हो चुका था। सड़क पर गिने–चुने लोग आते–जाते दिख रहे थे। ऑफिस की दीवार पर बिछे शीशे से रौशनी चमकती हुई इस तरफ आ रही थी। चाय बनाने के चूल्हे से गाढ़ा धुआँ निकल रहा था। चूल्हे के ऊपर टँगी झोपड़ी से धूप बूंद बूंद रिसते हुए जमीन पर गिर रही थी, रिसती हुई धूप कछुए सी धीरे–धीरे आगे सड़क की तरफ बढ़ रही थी। सुकून है कि गाड़ी नहीं है, न कोई व्यक्ति है वरना धूप बुरी तरह मरेगी। लड़की जाने कहाँ गई!

लड़का मुझे देख रहा था, जैसे मैं कुछ कहूँ और शब्दों को तुरंत अपने कानों में भरता जाए। एक भी शब्द छूटकर गिरे न, इसलिए वह बहुत पास खड़ा था। लड़के के बदन से मैं उस खुशबू के उठने का इंतजार कर रहा था जो उसने अभी–अभी अपने बदन पर डाली। जब तक उस खास इत्र की खुशबू नहीं आती, मैं इससे कुछ भी जरूरी नहीं कहता। पिछले दिनों मैंने अपनी बात बीच में ही रोक दी क्यांकि इत्र की खुशबू अचानक गायब हो गई। मैं बचैन था लेकिन शीशी पूरी खाली थी। उस लड़के ने एक मात्र शीशी इलायची के डब्बे में रख छोड़ी थी जो उस दिन नहीं मिली, आज पाई गई। अभी दुबारा मैं इस तरफ क्यों आया! यही इत्र!! इससे पहले की इत्र की खुशबू फिर स बुझे, मैंने अपनी बात कहनी शुरू कर दी।

मैं उसे काफी समय से जानता था। शायद यही कोई छह–सात सालों से मेरे साथ ऑफिस में काम करती थी। काम में बहुत अच्छी थी। उसका कुछ बर्ताव था, जो किसी

को भी इतने सालों में समझ नहीं आया। समझ नहीं आया तो लोगों ने गॉसिप करना शुरू कर दिया। उसे गॉसिप से भी दिक्कत नहीं थी। उसे दिक्कत थी चुप रहने से। उसे दिक्कत थी बोलते हुए में ज़्यादा बोल देने से। बुद्ध का मध्यम मार्ग उसके पल्ले ही नहीं पड़ा कभी।

लगभग शुरुआत के बरस में मैंने उसे एक बार कहा था कि ऑफिस में तू लोगों में घुला मिला कर, बातें किया कर दुख–सुख की। बातें बनाते हैं तेरे लिए फिजूल मे सब। वह सुनती ऐसे जैसे मैं कोई जरूरी बात कह रहा हूँ, करती ऐसे जैसे कभी कुछ सुना ही नहीं।

और इस तरह उसने फिर से मुस्कुराकर बात टाल दी। दिन होते कंप्यूटर पर उसकी अंगुलियों की आवाज ज्यादा, उसकी आवाज कम सुनी जाती थी। मीटिंग हो तो उसका बोलना सबसे कम होता था। उसका नाम धीरे–धीरे 'वो कौन है?' पर खत्म होने लगा। उसकी अनकही बातें केबिन के कोने में जमा होने लगी। पहले एक इंच की जगह बनी फिर दो, तीन, दस.... और फिर अनकही बातें इतनी भर गई कि उसे ऑफिस में अपना केबिन शिफ्ट करने की गुजारिश बॉस से करनी पड़ गई। बॉस ने कहा 'कितना सही तो है वह कमरा, तुम्हें वैसे भी कौन सा किसी से काम होता है! खुद में रहती हो। काम के लिए आती हो और काम करके चली जाती हो। ऑफिस के जो पुराने लोग हैं, वह भी तुम्हारा नाम नहीं जानते हैं। कई बार तो मैं भी भूल जाता हूँ कि तुम यहां हो। काम अपनी जगह है बेटा, लेकिन लोगों में घुलना, बातें करना जरूरी है। सहज नहीं रहोगी अपने साथ काम करने वालों के प्रति, तो वे असहज होते जाएंगे और इसमें नुकसान तुम्हारा कम, मेरा ज्यादा है। मेरा कम, तुम्हारे साथी का ज्यादा है। उसका कम फिर मेरा बहुत ज्यादा है।'

वह सुनती रही। अपने केबिन में जाकर कलम की नोक पटकती रही। कंप्यूटर की डिस्प्ले पर एक सूरजमुखी का फूल खिला था और उसके ऊपर बादल गुजर रह थे। बादल गुजरता रहा। शाम होते ही उसकी आँखों से तेज बारिश हुई और उसका पूरा केबिन गीला–गीला सा। अनकही बातें गीली हो गई। बहते–बहते बातें उसके पैरों से चिपक गई। उसने नीचे सैंडल की तरफ देखा तो वह भी गीली हो चुका थी। समय के 6:00 बजे और वह सेंडल को झटक कर बाहर निकल गई। कैब में बैठने से पहले उसने अपने पैर घास पर रगड़े। बातें घास पर चिपक गई। उसने शीश के बाहर मरी तरफ देखा और मुस्कुरा कर निकल गई। उसकी बातों को लोगों ने पैरों तले रौंद दिया।

अगली सुबह जब वह आई तो उसके आन से पहले, उसके आने की खुशबू सबके सीने तक भर गई और फिर दबी आवाज में शब्द और फिर वाक्य निकलने लगा। कुछ उस तक पहुँचा, कुछ लोगों के मुंह से निकलकर पड़ोसी के कान तक गया। कुछ मुंह से निकलकर कान तक भी नहीं पहुँच पाया, मन ही मन चलता रहा। आज पहली बार वह साड़ी में थी। बाल में गजरा लगाया हुआ था। ट्रेडिशनल कपड़े में वह एकदम रंगीन सिनेमा की मधुबाला की तरह कहर ढा रही थी। सबको लगा जैसे आज ता किसी और को ही देख लिया। 'मैं हूँ ना' की सुष्मिता सेन की तरह लाल साड़ी का पल्लू हिलाते हुए कहा– 'गुड मॉर्निंग केशव..... शाहिद..'

केबिन में घुसी और झट से बाहर आ गई।

'प्रदीप भैया, प्लीज आप मेरा केबिन ठीक से साफ कर दीजिए, बहुत गंदा है।'

प्रदीप झाडू लेकर बहुत उत्साह से कमरे की सफाई करने लगा। कोने में गिरा हुआ कचरा जाने कब से चिपका हुआ था, कितना भी रगड़े, निकल नहीं पा रहा था। उसके पसीने छूट गए।

'मैम यह तो साफ ही नहीं हो रहा है, जाने क्या है'

'छोड़िए, इतना काफी है। शुक्रिया भैया'

वह अपनी कुर्सी पर बैठ गई। शीशे के बाहर सारे लोग अपनी कुर्सी को त्याग कर खड़े हो चुके थे। शीशे के ऊपर दर्जनों आँखें चिपक गई। ऊपर से फिसलती आँखें फर्श तक गिर जाती, फिर मुंह उठाकर ऊपर तक चली जाती। आँखें सांप–सीढ़ी का खेल खेल रही थीं। उसने बाहर देखा तो सारी आँखें बंद और सारी कुर्सी भारी हो गई।

बॉस के आते ही कुछ फाइल लेकर उनके केबिन में गई। लोगों की आँखें उसकी आधी खुली पीठ से फिसलती हुई कमर के निचले हिस्से तक गई और केबिन में बैठे बॉस को देख अपने–अपने डेस्क पर टिक आईं। सबकी आँखों में आखिरी दृश्य उसकी कमर के निचले हिस्से का दर्ज था, जिससे शरीर में जितनी सिहरन और गुदगुदी हो सकती थी, हो रही थी।

'सर मैंने आज की मीटिंग के लिए एक्सेल शीट तैयार कर ली है। मैं, रितेश और शताक्षी से इसके बारे में बात कर लेती हूं। बस आप एक बार देख लीजिए। ये रही फाइल और ड्राइव।'

बॉस की आँखें उसके खुले होंठ के साथ होड़ लगा रही थी। जाने कौन रुके और कौन हारे! उसके गंजे सर पर कांपते आखिरी दो बाल दाएं–बाएं झूल रहे थे। चश्मा आधा नीचे को झुका था। घनी मूँछें तन गईं थीं।

'सर.......' उसने अपने बालों को कान के पीछे छिपाते हुए कहा। बालों में सजा गजरा और खूबसूरत लग रहा था। उसकी खुशबू केबिन में सारी जगह घेर चुकी थी, खुशबू बॉस के नाक में घुसी, बॉस को जैसे झटका आया।

'हां...ठीक है। थैंक यू... एंड गुड।' उन्होंने नजर हटाते हुए चौंककर कहा।

वह पेनड्राइव और फाइल रखकर मुस्कुराती हुई अपने केबिन में चली गई। देखने के लिए सब उसके उदास ढके बदन में खुले हुए हिस्से की झलक तलाशते रहे, कुछ भी नहीं दिखने पर 'काश दिख जाएं' की आँखें बार बार मायूस होती रहीं।

'आज तो अजब नजारा है भइया। लगता है पति ने कुछ ज्यादा ही प्यार कर लिया था रात को। एकदम से रिफ्रेश लग रही है' रिसेप्शन पर बैठे नितिन ने मजे लेते हुए दबी आवाज में कहा। कहने में उसकी हथेली छुपी हुई मुद्रा में तरह–तरह की भंगिमाएं जाहिर कर रहीं थीं। इससे उसके कहने के बीच छुपा हुआ न कहना भी कहा जा रहा था।

'अभी अपने पति के साथ रहती कहां है बे। चार साल हो गए शादी को, डेढ़ साल में ही पति छोड़कर अलग हो गया। अकेले रहती है, अब जाने कौन सहलाता होगा थके सीने का दर्द' इरशाद ने नितिन की बात पर गरासा चलाया। नितिन बात सुनते हुए थोड़ा पास आ चुका था, आँखें उसी लड़की की तरफ थी।

'पर लग तो कमाल रही है। देखना आज तो कसम से....' इरशाद ने रुककर कहा। निकिता के पीछे एक मैकेनिक अंदर आया, दोनों चुप हो गए। अब उनकी नजर निकिता के भरे हुए मांसल, खुले हुए सीने से होते हुए उसकी पीठ, कमर का निचला हिस्सा और गोरी चमकती टांगों तक गई। मैंने गौर किया है, जब भी निकिता आती, सबकी नजरों के भार से निकिता हमेशा लदी रहती, उसकी चाल बहुत धीमी हो जाती, लगता जैसे अब बुरी तरह थक चुकी है।

'तुम्हार ऐ सी के लिए आए हैं। देख लीजिए भैया। जाते हुए मुझसे मिल लीजिएगा।'

उसने दरवाजा हल्का सा खोला, फिर पूरा खोल दिया। मैकेनिक ने ऐ सी उतारा, ठीक किया और चला गया। शीशे पर आँखों के भार से चिनक उठने लगी थी।

उसने रितश, शताक्षी का अपने केबिन में बुलाया और मीटिंग के लिए बातें की। खूब बातें की। मीटिंग के लिए बाहर से कुछ लोग आए थे, सब उससे इंप्रेस थे, मीटिंग बहुत अच्छी रही और बॉस ने उसे इसके लिए बधाई भी दी।

ऑफिस में सबकी आँखों में गजरा और उसकी साड़ी की लालिमा उतर आई थी। सफेद चौंधियाती रोशनी सुरमई सी हो गई और वह सूरज की तरह चढ़ाई चढ़ते थक कर शाम को बाहर अस्त हो गई।

'ऐसे ही रोज आए तो मजा मिलेगा। ब्लॉउज कुछ ज्यादा टाइट नहीं था! थोड़ा ढीला ही रखती तो क्या बिगड़ जाता..' इरशाद ने पूछा, नितिन ने आँख मार दी।

वह बाहर निकल कर यहीं इस चाय की टपरी पर आई। रोज की तरह वह लड़का सामने ऑफिस की भीड़ में निकलते हुए लोगां में उसका इंतजार कर रहा था।

'दो कप चाय बनाना स्पेशल वाली' उसने कहा।

लड़के की नजर दूसरे कप के हकदार को ढूंढने लगी। कोई नहीं मिला। उसने बड़े मन से चाय बनाई। लोगों की भीड़ में शोर, शोर में थकान, थकान में एक ही तरह से जिए की उबन, कल के नए–नए प्लान, किसी का महीने के खत्म होते ही कहीं जाने का इंतजार, किसी की रात में अपनी दोस्त के पास रुकने की इच्छा। इस चाय की महक का इंतजार उसे सुबह से होता।

दो कप चाय लेकर लड़का आया। लड़के की आँखों में सवाल 'दूसरी चाय किसके लिए है?' लड़की की आँखों में जवाब 'तुम्हारे लिए'।

दोनों के होंठ पर चाय का स्वाद, लोगों के शोर में एक धीमा शोर इन दोनां के हिस्से का।

अगली सुबह वह उदासी को ढोते हुए अपने केबिन में गई। सबकी आँखों में किया गया प्रीडक्शन धम्म से कुर्सी के भीतर तक लुढ़कता गया। सबकी आँखों में निराशा का बादल। इरशाद और नितिन को मिला आज की चर्चा और जस्टिस बिठाने का नया विषय।

अपने केबिन में गई तो वहाँ गीलापन पसर आया था अनकही बातों का। उसके ऊपर ही कुर्सी चढ़ा कर बैठ गई। डिस्प्ले पर करेन होलिंग्सवर्थ की पेंटिंग। आँखों में थकान और उबन। चेहरे पर उदासी और शब्दहीनता का भाव।

'देखा, कल जरूर कोई बात रही होगी जो इतना सज–धज कर आई थी रानी' नितिन ने इंस्टा पर अधनंगी

नंगी और आकर्षक लड़कियों की तस्वीर स्क्रॉल करते हुए कहा, जैसे कहना उसके मुंह में काफी दर पहल भर गया था, और मौका पाते ही वो निकल आया कूद कर बाहर। आज उसे इस कपड़े में देखकर गहरी निराशा हुई। सबको ही निराशा हुई। बॉस ने बिना काम के भी उसे केबिन में बुलवाया, फिर दरवाजे से ही बाहर वापस भेज दिया।

'भाव बढ़ाने के लिए कल चहक कर आई थी गुरु, देखा नहीं कल ऑफिस में कैसे सेंट भर–भर कर घूम रही थी' इरशाद का दिल आज उसे देखते ही धक्क से बैठा था।

निकिता अंदर आई। दोनों की आँखें खिलीं, साथ में पूरा ऑफिस आज खिलने वाला था।

लोगों के कानों में तरह–तरह की बातें, तरह–तरह की कहानियां, तरह–तरह की चुप्पी, तरह–तरह की निराशा, तरह–तरह की आँखों में तरह–तरह की उम्मीद।

उस दिन के बाद वह लगातार ऐसा ही करती रही। जब बॉस की बातों का बोझ बढ़ जाता कि लोगों से इंटरेक्ट किया करो, वो बहुत हिम्मत कर सज–धज कर आती और सब में घुलमिल जाती, जैसे उन्हीं का हिस्सा हो। फिर ऐसे खुद में समा जाती जैसे शल के भीतर दबा हुआ कछुआ। बाहर कितना भी डंडा पीट लो, दिखता नहीं।

पति से उसकी बनी नहीं कभी। दोनों बिल्कुल अलग। बात करने को कई बातें, सुनने वाला कोई नहीं। समझने वाला कोई नहीं। सुनने वालों में कोई भी नहीं मिला तो शाम में मिलते टपरी वाले लड़के से बातें करती। दिनोंदिन दोनों के बीच बातों की सहजता बढ़ती गई। लड़का अपनी बात बड़े मन से कहता, जो कि कभी–कभी होता। लड़की अपनी बात बड़े मन से कहती, जो कि हमेशा होता। जिस दिन वह ऑफिस नहीं आती, लड़का इंतजार करता रहता। दिन पहाड़ सा बीतता और शाम को जल्दी ही घर चला जाता। वह रात बड़ी मुश्किल से कटती थी उसकी। एक बार उसकी तबीयत खराब हो गई, कुछ दिनों तक वह ऑफिस नहीं आई, शाम को उस लड़के ने मुझे बुलाकर उसके बारे में पूछा था। खराब तबीयत के बारे में सुनकर उसका चेहरा अचानक से रेत की तरह बिखर गया था। बेचैनी उसकी देह से झाँकने लगी। उस लड़की के बारे में सुनते ही उसके चेहरे का रंग बदल जाता, उसकी देह से अजीब सी खुशबू की फुहारें उठने लगतीं, ऐसी फुहारें और कहीं नहीं महसूस हुई थी। मैं उस लड़के को देखता, और फिर उस खुशबू के खुमार में उसे सारी बात बता देता, लड़का केवल सुनता, जैसे उसके कहने का रास्ता बंद हो गया हो, सुनन में ही कहने की भरपाई हा जाती हो।

एक दिन वह ऑफिस जाने के बजाय सुबह उसकी दुकान पर चली गई। ऑफिस जाने का रास्ता भूल गई। आधा दिन वहीं उस लड़के के पास चाय पीती रही।

'मैं तुमसे जितनी भी बातें करती हूँ, तुम किसी से कहते तो नहीं न!' उसने मिलने के शुरुआती दिनों में ही बहुत मन से उस लड़के से पूछा।

'तुम्हें लगता है कि ऐसा करूंगा!' लड़के ने उतने ही मन से उससे पूछ लिया। 'मुझे बस कुछ दिनों में वापस गांव जाना है। मुझे लोगों ने फर्जी केस में फंसा दिया है। वापस जाने के लिए पैसे चाहिए, जमा कर रहा हूं। चला जाऊंगा तो वापसी का रास्ता यूं भी भूल जाऊंगा। तुम डरो मत।'

'ठीक है। मैं तुमसे एक बात कहूं, मानोगे ?' लड़की ने पूछा।

लड़के ने बिना सोचे गर्दन घुमा दी, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता कोई इन दोनों को बातें करता देखता तो क्या सोचता। उसे उस लड़की से उठती इत्र की खुशबू में यूं भी कुछ भी याद नहीं रहता।

'तुम्हें मैं रोज पैसे दिया करूंगी या फिर एक्स्ट्रा चाय पी लिया करूंगी। साथ में इत्र की डिब्बी भी दूँगी ताकि उसकी खुशबू में मेरा बोलना न रुके' लड़की ने हिचकते हुए कहा 'बस शर्त यह है कि तुम आज से किसी से कुछ नहीं बोलोगे। बात नहीं करोगे। कुछ भी बात नहीं। अपनी नाक बंद कर लोगे। मंजूर?' लड़की ने पूछा।

'मुझे शर्त मंजूर है, पर बिना पैसे के। मैं सुनने के पैसे नहीं लेता, चाय के लूँगा। वैसे भी मैं जिस दौर में हूं, मेरी सुनता कोई नहीं, सब सुनाते हैं बस। गाँव का केस भी मेरे बस सुनते रहने से ही शुरू हो गया।'

दोनों की रजामंदी हो गई। लड़की दिन भर की थकान और अनकही बातें उसी से कहने लगी। केबिन का ढेर कम होने लगा, लड़के के भीतर परतें चढ़ने लगी। आसपास लोग कम दिखने लगे, किस्से बनने और बढ़ने ज्यादा लगे।

उधर ऑफिस में धीरे–धीरे लोगों से उसकी दूरी और बढ़ने लगी। वह लोगों से कुछ दूर, लोग उससे बहुत दूर, पर बातों में बहुत भीतर तक घुसे हुए।

फिर उस दिन उन दोनों की मुलाकात हुई। लड़की ने उसे बताया– 'मैंने शादी की, लेकिन उससे मुझे बंदिशें

ज्यादा मिलीं, स्वतंत्रता धीरे–धीरे सिकुड़ती हुई इतनी छोटी हा गई कि गुम हो गई।

हम दोनों अलग अलग शहर में रहते हैं। शादी–ब्याह में किसी कार्यक्रम में मुझे जाना होता है उसके साथ, तो लोग तरह–तरह की बातें करते हैं। तरह–तरह की बधाइयां देते हैं। किसी को न ही ये बता पाती हूँ कि मैं अकेली हूँ, न ही साथ। अकेली कहा तो गिद्ध की तरह टूट पड़ेंगे, साथ कहती आई हूँ तो कई तरह के सवालो से मैं ऊब चुकी हूँ।

हमारी शादीशुदा जिंदगी की उम्र बढ़ती गई, मेरी एक अदद खुशी की जिंदगी कम होती गई। ऑफिस में सब छोड़कर मैं बाहर भाग आई हूँ। केबिन में बैठने की अब जगह नहीं रही। कहने को बहुत सारी बातें हैं मेरे पास, सुनने वाला चाहिए, तो बस मेरे साथ चलो। अभी।'

लड़के ने बिना कुछ और सोचे हामी भर अपना सामान पैक किया और उसके साथ निकल गया।

फिर न कभी लड़की दिखी, न वह लड़का। दोनों ऐसे गायब हुए जैसे अस्तित्व मिट जाता है। केबिन में उसकी फोटो लगी थी, हुमायूँ किले की देहरी पर बैठे हुए। पीछे कब्र और उसके सामन घुटने मोड़े बैठी हुई वह लड़की। आखों पर चश्मा, चश्मे से झाँकती उदास आँखें, घुँघराले सुनहरे बाल, पीला लिबास जैसे सूरजमुखी का फूल खिला हो।

जब काफी दिनों तक उसकी कोई खबर नहीं मिली तो बॉस ने उस केबिन को खाली करवाया, उसकी फोटो वही रह गई। उसे ऐसे चिपकाए गई थी कि शीशा तोड़ना पड़ जाए, तब वह हटे। फोटो अब भी वहीं है, उसके सामने ही मैं बैठता हूं। मुझसे उसने जाते–जाते कहा था 'मेरी फोटो जल्दी मत हटाना, वरना लोग मुझे बहुत जल्द भूल जाएंगे।' उसे भुला दिया जाना नहीं पसंद था। उसे याद रखे जाना भी नहीं था पसंद।

लोगों की जुबान पर उस फोटो के बहाने ही कहानियां हैं। वरना लोगों को भूलते कितना वक्त लगता है। मैंने उसे ढूंढने की कोशिश कभी नहीं की। उसकी फोटो से अनकही बातें मैं कह लेता हूँ, जो सोचा कहते–कहते कह दूंगा कभी एक रोज, वो अब कह देता हूँ। उसकी आँखों की उदासी अब मुझे उदास नहीं लगती, अपनी आँखों लगती हैं, इंतजार से भरी आँखें...मैं उसके केबिन में बैठकर उसकी अनकही बातों की चुप्पी का पहाड़ कुतरता रहता हूँ। बहुत मेहनत कर एक टुकड़ा चख पाता हूँ। मुझे बहुत खुशी है कि केबिन में हम साथ–साथ हैं।

धूप सर चढ़ आयी था। धूप का कछुआ जाने कहाँ छुप बैठा या कहीं किसी पैरां तले रौंदा गया! बिल्ली अब भी जागी थी, लड़का बेंच पर लेट चुका था, उसकी आँखें बंद थी, बिल्ली उसे ही ताक रही थी। ऑफिस का चमकता शीशा बुझ चुका था। चूल्हे से धुआँ बहुत कोशिश के बाद कराहता हुआ बाहर निकल रहा था।

"तुम्हारी बात हुई है कभी उस लड़के से?"

"नहीं..मेरे ही गाँव का है वह। जाते हुए उसने कहा था स्टॉल को कभी बंद मत होने देना। मैं बस उसकी बात का मान रख कर इसे चला रहा हूँ। ग्राहक के नाम पर सिवा आपके कोई नहीं आता।" लड़के ने बंद आँखों से ही मायूसी से कहा। मेरा पूछा हुआ सवाल मुझे खुद भी सुनाई पड़ा उस लड़की के लिए।

"कुछ समय पहले उसकी एक फोटो देखी थी फेसबुक पर, किसी ने साझा किया था शायद। लिखा था 'ऐसा लड़का है जो लोगों की बातों को सुनता है, इसकी आँखें बंद होती हैं, जाने कब से खुली नहीं है। दोनों कानों और केश के बीच कुछ पीपल उग आए है, हरी पीली कोंपल हैं, दोनों कंधों पर चिड़ियों की सफेद बीट फैली हुई है। इसके मुंह तक इत्र की शीशी टँगी है, लोग आते हैं इत्र की शीशी रखते हैं, अपनी बात कहते हैं और उसकी गर्दन अकड़ कर हिल जाती है। उसकी गर्दन हिलती है, लोग समझते हैं कि उसने सब सुन लिया।' कहते हुए लड़का उठकर बैठ गया। पूरी बात कहते हुए उसकी आँखें बदल गई थीं। 'मुझे भी दिखाओ ना' मैंने पूछा। इस कहने में मुझे मेरा ही रिरियाना सुनाई पड़ा। "नहीं, नहीं है अब। मैंने उस फोटो को सेव कर लिया था। जब बहुत दिन बाद खाला तो 'अनरीच्ड इमेज' लिखा हुआ था। मैंने उसी लिखे मे उसकी शक्ल कई बार देखी है। कई महीनों से मैं भी गाँव नहीं गया हूँ, जाऊंगा तो उसके घर वाले को क्या जवाब दूंगा!" लड़के ने कहा। इत्र की खुशबू अचानक से बंद हुई, कहना–सुनना बंद हुआ।

अगले दिन ऑफिस जाकर मैंने देखा, शीशे पर दरार पड़ी मिली और वहां से उसकी फोटो उखड़ी हुई है। पूरे केबिन में छान मारा। कहीं पर कोई निशान नहीं मिला। मैंने शीशे को खुरचा। वहां उदासी की राख बची थी। मैंने उस जगह अपने होंठ रख दिए। ◆

पता : फ्लैट नं.–202, द्वितीय फ्लोर, बी विंग, अंधेरी वेस्ट, मुम्बई–400061
मो. : 8877225078

बनारस की गंगा

❑ नेहा वर्मा

बनारस कहें या काशी कहें या फिर इसे वाराणसी कह लिया जाये। खैर नाम में क्या ही रखा है, नाम सभी खूबसूरत हैं, लेकिन, ऐसा अद्‌भुत शहर शायद ही दूसरा हा, जहां जीवन के अंत का शोक नहीं, अपितु उत्सव मनाया जाता हो। यहां दिन में लोग भोलेनाथ के दर्शन करते हैं और रात्रि में 'मणिकर्णिका' और 'हरिश्चन्द्र' घाट जलती चिताओं को देखकर जन्म और मृत्यु के इस जीवन चक्र को समझने का प्रयास कर रहे होते हैं। बनारस, जिसके नाम में ही रस हो, उस शहर में भला आनन्द की क्या ही कमी हो सकती है। इस शहर को भक्ति और वात्सल्य के रस में भिगोने का श्रेय मुख्यतः जाता है– ''बनारस की गंगा को। इस शहर में देखने लायक तमाम अद्‌भुत दृश्यों में से एक है, बनारस की गंगा। देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि ''मानों भगवान शिव की जटाओं से अवतरित होने वाली गंगा मैया ने काशी को अपना हृदय समर्पित कर दिया हो।''

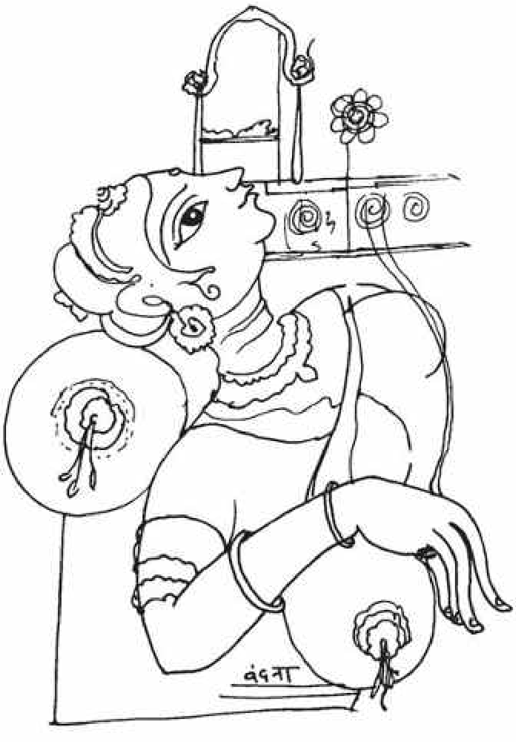

ऐसा कहा जाता है, कि यह नगरी भगवान शिव के त्रिशूल पर विराजमान है। पौराणिक कथाओं की मानें तो प्रलय के समय भगवान शिव ने काशी को बचाने के लिए इसे अपने त्रिशूल पर धारण कर लिया था, इसलिये बनारस को शिव की नगरी भी कहा जाता है। यहां के कण–कण में या यूं कह लिया जाये, काशी के हर पत्थर में शिव विराजमान है, अतिशयोक्ति नहीं होगी। फिर शिव के शीश पर विराजमान होने वाली गंगा कैसे नहीं, काशी को अपना हृदय समर्पित करने हेतु विवश हो जातीं। भारत देश में इसलिए तो खास है, बनारस की गंगा। बनारस में गंगा नदी आस्था और आध्यात्मिकता का केन्द्र है, जो 84 घाटों के साथ एक अर्धचन्द्राकार रूप में बहती है। 'दशाश्वमेध' और 'अस्सी घाट' की गंगा आरती और नौका यात्रा प्रमुख आकर्षण का केंद्र है। एक जानने योग्य बात यह भी है कि 'मणिकर्णिका' घाट से 'तुलसी' घाट तक गंगा नदी उल्टी दिशा में बहती है। इन दो घाटों के बीच की दूरी लगभग 1.5

किलोमीटर है। इस 1.5 किलोमीटर के बीच करीब–करीब 45 घाट पड़ते हैं।

इसके पीछे भी एक रोचक कथा है। हुआ यूँ कि जब स्वर्ग से गंगा नदी का धरती पर आगमन हुआ, तो इनका बहाव इतना तेज था, कि वाराणसी के घाट पर तपस्या कर रहे भगवान दत्तात्रेय का आसन और कमंडल बहकर करीब 1.5 किलोमीटर की दूरी तक आगे चला गया था। गंगा को जब पता चला तो भगवान दत्तात्रेय को उनकी वस्तुएं लौटाने के लिए वापिस लौटी, साथ ही क्षमा प्रार्थना भी की। तब से गंगा नदी काशी में डेढ किलोमीटर तक उल्टी बहती है। हालांकि वैज्ञानिक कारण भौगोलिक दशाओं पर आधारित हैं।

गंगा नदी के आस–पास का नजारा कुछ ऐसा है कि सभी प्रमुख घाटों से सीढ़ियाँ नदी की तरफ उतरती हैं। बहुतेरे लोग घंटों घंटों तक घाट की निचली सीढ़ी पर बैठकर अपने पांवों को नदी में अर्धडूबा/अर्धजलनिमग्न करके रखते हैं। फिर जब गंगा नदी की लहरें हिलोर मारते हुए अठखेली स्वरूप एक–दो उछालें लगाती हैं, तो तन को स्पर्श करते ही गंगा नदी का पावन जल चित्त को एकदम शांत कर देता है। एक तरह से देखा जाए तो ये मुफ्त में मिलने वाले बेस्ट थेरेपी सेशन की तरह है, मांइड के लिए। इस स्थान की सकारात्मक ऊर्जा इतनी है कि नकारात्मक विचार आने की संभावना लगभग न के बराबर है।

प्रातः काल होते ही सूर्य की किरणों की हाजिरी/उपस्थिति के साथ नदी के किनारे बने घाटों पर गंगा आरती, स्नान ध्यान, बाधा मुक्ति आदि जैसे पूजा–पाठ के धार्मिक अनुष्ठान शुरू हो जाते हैं। लोग 'गंगा स्नान करने के बाद महादेव के दर्शन के लिए 'काशी विश्वनाथ' मंदिर को जाते हैं। गंगा नदी में होने वाला नौका विहार प्रमुख आकर्षण का केंद्र हैं। क्रूज बोट के साथ साधारण कश्तियाँ भी दिन–रात उपलब्ध रहती हैं, जो सभी घाटों के दर्शन और सैर भी करवाती हैं। आमतौर पर बड़ा ही मनमोहक दृश्य होता है–घाट का। कोई आस्था की डूबकी लगा रहा होता है, तो कोई सूर्य को अर्घ्य देते हुए प्रार्थना कर रहा होता है। बड़ी तादाद में पक्षी नदी के जल को अपने पंजों से स्पर्श करते हुए, चहचहाते हुए, क्रीड़ायें करते हुए दिख जाते हैं, तो दूसरी ओर मणिकर्णिका और हरिश्चन्द्र घाट पर चिताओं की अग्नि दहक रही होती है। अस्थि विसर्जन के क्रिया–कलाप भी हो रहे होते हैं। शब्दों में व्याख्या कर पाना कठिन है– अर्पण और तर्पण का ऐसा अलौकिक संयोग तो केवल "बनारस की गंगा किनारे ही दृश्यमान हो सकता है।"

ऐसा कहा जाता है, कि यह नगरी भगवान शिव के त्रिशूल पर विराजमान है। पौराणिक कथाओं की मानें तो प्रलय के समय भगवान शिव ने काशी को बचाने के लिए इसे अपने त्रिशूल पर धारण कर लिया था, इसलिए बनारस को शिव की नगरी भी कहा जाता है। यहां के कण–कण में या यूं कह लिया जाये काशी के हर पत्थर में शिव विराजमान है, अतिशयोक्ति नहीं होगी। फिर शिव के शीश पर विराजमान होने वाली गंगा कैसे नहीं काशी को अपना हृदय समर्पित करने हेतु विवश हो जाती। भारत देश में इसलिये तो खास है, बनारस की गंगा।

सुबह–शाम भव्य 'गंगा आरती' होती हैं। सुबह की आरती को "सुबह–ए–बनारस" कहा जाता है। संध्या काल की आरती तो एकदम दैवीय–देवलोक के दृश्य सी प्रतीत होती है। क्योंकि सूर्यास्त के पश्चात अंधियारे में जब घाट पर दीपक की रोशनी और कपूर की लौ से जगमग–जगमग आभा निखरती है, तो बड़ी दिव्य लगती है। आरती के समय धुनी की भीनी–भीनी ही खुशबू, साँसों में घुल जाती है। जयकारों व घण्टियों की गूंज अंतरात्मा तक जाती है। रोम–रोम भक्तिमय हो उठता है।

काशी के मणिकर्णिका घाट तथा हरिश्चंद्र घाट की विशेषता यह है कि इन घाटों पर हर पहर में चिताएं जलती रहती है। ऐसी मान्यता है कि इन घाटों पर दाह–संस्कार होने से मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है। इसीलिए तो शिव की इस नगरी हो मोक्ष की नगरी भी कहा जाता है। इन जलती चिताओं को ठहरकर कुछ देर देखना स्वयं का जीवन के अटल सत्य से परिचय अवश्य ही करा देता है। कि अंत ही सत्य है। फिर आदमी क्या? और गंगा नदी क्या? कोई अन्तर नहीं। अंत से तो गंगा जैसी पवित्र नदी भी अछूती नहीं है। प्रकृति अपने 'सृजन' से भेदभाव नहीं करती। ये सब तो मनुष्य मात्र के चोंचले हैं। प्रकृति द्वारा निर्मित प्रत्येक 'सृजन'

का यदि आरम्भ हुआ है, तो अन्त भी निश्चित ही होगा। घाटों के किनारे बहुत से प्राचीन मंदिर भी बने हुए हैं, जिनके अपने इतिहास हैं।

घाटों के भी अपने पुराख्यान लेख हैं। कुछ घाटों पर जगह–जगह चाय की टपरियाँ बनी हुई है। बनारस के सौंधे कुल्हड़ में मिलने वाली अदरक–इलायची के स्वाद से भरी दूध की गरम चाय की चुस्की का लुत्फ उठाते हुए गंगा नदी की कल–कल की मधुर ध्वनि को सुनना और इधर–उधर भागती दौड़ती हुई लहरों के खेल को देखना। किसी मनोरंजक सिनेमा से कम नहीं लगता। ज्यादातर रात में नींबू–नमक की काली मसाला चाय मिलती है। जिसे कुछ युवक एक बड़ी केतली में भरकर बेचते हैं, इसका फायदा ये है कि यह चाय अपनी जगह पर बैठे हुए ही मिल जाती है। एक तो शीतल हवाओं का सुखद अनुभव और दूसरा घाट पर उपलब्ध मुफ्त का ज्ञान कानों तक पहुंचता रहता है। थोड़ी–थोड़ी दूरी पर हल्की ऊंचाई के चबूतरे बने हुए हैं, घाटों पर। गंगा किनारे जिनपर बैठकर कुछ लोग किस्से–कहानियां सुनते हुए मिल जायेंगे, तो कुछ कहानियां बुनते हुए, तो कोई हाथ में गिटार/वाद्ययंत्र पकड़े हुए किसी फिल्मी गाने व लोकगीत को गाकर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करते हुए दिख जायेगा। वैसे भी आजकल तो रील बनाने ट्रेंड चल ही रहा है। एकाध नृत्य प्रदर्शन करते भी दिख जायेंगे। घाट पर उपस्थित मानुष बड़े ही चाव से इन सबका आनंद लेते दिखाई पड़ते हैं।

बनारस की गंगा नदी के घाट आध्यात्मिकता के प्रमुख केन्द्र हैं। अब ता अध्यात्म केवल अपने भारत देश तक ही सीमित नहीं रहा है, अपितु गंगा घाट पर कई विदेशी भी उपस्थित थे, जो भारतीय संतों के साथ बैठकर ध्यान–साधना कर रहे थे। विदेशी साधु भी थे, परन्तु बहुत ही कम संख्या में। विदेशी सैलानी, साउथ कोरिया, अमेरिका, इटली, ब्रिटेन व नेपाल जैसे देशों से आये हुए थे। खैर सभी काफी प्रसन्नचित्त दिखायी दे रहे थे। उर्दू के मशहूर शायर अहमद फराज के गजल की ये पंक्तियाँ 'बनारस की गंगा' पर एकदम सटीक बैठती हैं– "सुना है, लोग उसे आँख भर के देखते हैं। सो उसके शहर में कुछ दिन ठहर कर देखते हैं।"

जी हाँ। अगर बनारस की गंगा को समझना हो तो ठहरकर ही देखना पड़ेगा, किसी मशहूर किताब में भी लिखा है कि बनारस जाते कई हैं पर पहुँच बहुत कम पाते हैं। लेकिन सवाल तो रह जाता है। आखिर ऐसा क्या है?, जो लोग घाटों पर बैठकर घंटों तक बस उस गंगा नदी के जल प्रवाह को निहारते ही रह जाते हैं– "यकीनन खुद के जीवन को कहीं न कहीं ढूंढ रहे होते हैं, गंगा में।" सही भी तो है बस समझने के लिए एक स्पष्ट दृष्टि के साथ स्पष्ट दृष्टिकोण होना चाहिय। कुछ–कुछ जीवन सी है गंगा, कुछ–कुछ गंगा–सा है जीवन। उद्‌गम यानि जन्म से आरम्भ करके अंत यानि मृत्यु की ओर जाना। सबका अपना–अपना जीवन चक्र है। फिर चाहे वह आदमी हो या गंगा नदी हो, कोई अंतर नहीं है। जीवात्मा तो पवित्र ही जन्म लेती है। बिल्कुल गंगा नदी की भांति। उद्‌गम एकदम शुद्ध रूप से होता है। परन्तु, इस जीवन काल के दौरान सभी को अच्छी व बुरी दोनों प्रकार की प्रवृत्तियां व परिस्थितियों के जीवन अनुभव मिलते है। जिस प्रकार से नकारात्मक प्रकृति के प्राणी गंगा नदी के पावन जल को मैला और दूषित कर देते हैं, ठीक उसी प्रकार हर प्राणी को भी अपने जीवन–काल में नकारात्मक प्रकृति/प्रवृत्ति से ग्रसित प्राणी मिलते हैं, जो कष्ट पहुंचाने का कार्य करते हैं तो कभी कठिन परिस्थितियां मिलती है। गंगा भी देखती है, कभी अतिवृष्टि, तो कभी अनावृष्टि। वह बनारस की गंगा ही है, जिसे स्वयं महादेव से जीवन और मृत्यु के चक्र को जोड़ने का आशीर्वाद मिला है। फिर गंगा की सैकड़ों लहरों का आपस मं 'मिलना' और 'बिछड़ जाना' किसी प्राणी के जीवन अनुभव से अलग थोड़े ही है। न जाने कितने अंनत काल से इस नदी ने कितने ही हर्ष उल्लास के क्षण देखे होंगे। कितनों की दुख–पीड़ा की गाथा की भागी बनी होगी, कितने प्रेम–संवाद सुने होंगे या कितने वचन/प्रतिज्ञा की साक्षी बनी होगी। एक जीवन की भांति ही अनुभव लिये होंगे। खैर गंगा नदी स सीख लने योग्य बात यह है कि परिस्थितियाँ चाहे जो भी हों, गंगा की जलधारा के प्रवाह की भांति जीवन कभी रुकता नहीं है। समय के साथ–साथ निरन्तर अपने, अन्त की ओर बढ़ता चला जाता है। ◆

पता : 634/सी–10, जगदीश विहार, इन्दिरा नगर, लखनऊ

मो. : 7309739195

अम्मा

पारुल मित्तल

बच्चे कहते है आजकल मैं अपनी अम्मा सी हो गई हूं
अक्सर कहती हूं बच्चों से जल्दी काम करो
खाने से पहले स्नान करो
मेरी ही तरह कहते है बच्चे कर लेंगे अम्मा.....

कभी तो मंदिर जाया करो
थोड़ा पूजा में मन लगाया करो
गीली तौलिया सुखाने डाल दो
बालों में तेल थोड़ा डाल लो
मेरी ही तरह बच्चे कहते है कर लेंगे अम्मा ....

बहुत देर हो गई अब पढ़ाई कर लो
कुर्ता उधड़ रहा है सिलाई कर लो
पड़ोस वाली आंटी आए तो चाय बना देना
रात के खाने के लिए आटा लगा देना
मेरी ही तरह बच्चे कहते है कर लेंगे अम्मा....

अब मैं अपने बच्चों को ढंग सिखा रही हूं
अच्छे बुरे की तहजीब बता रही हूं
दुनियां के तरीके से अवगत कराना है
सीढ़ी दर सीढ़ी ऊपर चढ़ाना है
मेरी ही तरह बच्चे कहते है कर लेंगे अम्मा

कब मैं अम्मा सी हो गई पता ही न चला
बच्चे कहते है मै अम्मा सी दिखती हूं
शायद इसीलिए अम्मा से ताने सुनती हूं
अम्मा बहुत याद आती है तुम्हारी
काश तुम देख पाती
तुम्हारी बिटिया अब तुम सी हो गई है।

◆

पता : अचल कोठी, अचल रोड, अलीगढ़–202001 (उ.प्र.)
मो. : 9027225664

छूटा गांव का सहारा

डॉ. अलका अस्थाना 'अमृतमयी'

सूरज के उगने का इशारा।
जैसे जीवन जीता सारा।।

किरणों की चादर से पसरी
खेतो की हरियाली गहरी
मुरझाये पुष्पों से बहती
भीनी –भीनी खुशबू सारी
ऐसे गांव मेरा था न्यारा।।

झूले हम सब पेंग लगाके
नीम पकरिया पाकर सारे
हमसे बातें करते थे वृक्ष
पलती सी निकली थी मेड़
छमछम पायल घुघरूं मोहरा।।

सावन में मेंहदी की धारी,
चुनरी फैलाये वो गोटेवाली।
महुवा की चूते फल जैसे,
पुए बने चूल्हे में महके।
बासंती तहरी स बहती।
सुर बांधे लोकगीतों फव्वारा।।

◆

पता : 356/24, आलम नगर रोड, बावली चौकी, लखनऊ
मो. : 893488441

कल हमारा है

डॉ. रविशंकर पांडेय

बीत गईं कल की बातें
बीत गईं काली रातें
सूर्योदय न्यारा है,
आज हमारा है
कल हमारा है।

सब जाति धर्म
मजहब वाले
बाहों में बाहें डाले,
अपने हाथों से अब हम
अपनी किस्मत लिखने वाले,

नई किरन फूटी
टूटी अब तम की कारा है।

है पूरब में छाई लाली
चलो उठो अब दे ताली
कलम कुदाल संभालो साथी
कोई हाथ न हो खाली,

अब आराम हराम हमें
यह सब का नारा है।

हर दिन होगी दीवाली
हर दिल होगी खुशहाली
थाली भर खुशियां ले आए
हर रोज आपकी घरवाली,

अटल रहे संकल्प हमारा
ज्यों ध्रुवतारा है।।

◆

पता : 5/246, गोमतीनगर विस्तार
लखनऊ–226010
मो. : 9140852665

हिंदी पर सिद्धेश्वर की कुछ कविताएं

सिद्धेश्वर

एक

अपनी पहचान लिखी है, अपनी स्याही से हमने!
देश के लिए हमने, हिंदी का गुणगान लिखा है!!
विरासत में मिली हमें, लिखने–बोलने की आजादी!
गैरों की नहीं, अपनी भाषा में संवाद लिखा है!!

दो

अंग्रेजी की जगह अपनी, प्रांतीय भाषाएं सिखलाएं!
बहुत जरुरी हो तब, गैरों की भाषाएं अपनाएं!!
आजादी पा लेना ही हमारे देश का, मकसद नहीं!
''हिन्दी'' ही हमारी राष्ट्रभाषा, बच्चों को समझाएं!!

तीन

भाषाओं के शीर्ष की पहचान है हिंदी!
मान–सम्मान, देश का स्वाभिमान है हिंदी!!
''दिल की जुबां यहि कहती है, आजाद है वतन,
भारत मां की बिंदी, देश की शान है हिंदी !

चार

हिंदी हमारी राष्ट्र की फुलवारी है!
हिंदी ही कश्मीर है, कन्याकुमारी है!!
कुंठित मन की खोल दो खिड़कियां!
हिंदी में ही मान सम्मान हमारी है!!

◆

पता : सिद्धेश् सदन अवसर प्रकाशन, (किड्स कार्मल स्कूल के बाएं),
पोस्ट रुबीएचसी, द्वारिकापुरी रोड, नंबर–02 हनुमाननगर, कंकड़बाग,
पटना–800026 (बिहार)
मो. : 9234760365

कविता

पिता के उपकार

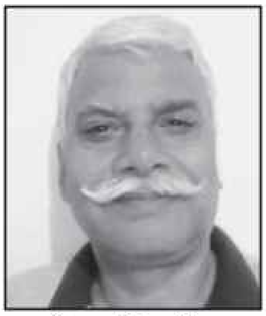

रविन्द्र सिंह पँवार

उसकी यादों में हर पल हूँ खोया हुआ, मैं उसे भूल जाऊँ ये मुमकिन नहीं।।
मेरे दिल में बजी सैकड़ों घंटियाँ, उसकी आवाज हरदम बुलाती मुझे।
बंदिशों का असर मंद पड़ने लगा, प्यार की मीठी लोरी सुनाती मुझे।
जो है पतवार भटकी हुई नाव का, मैं उसे भूल पाऊँ ये मुमकिन नहीं।।
उसकी यादों मं......

जो ये रिमझिम घटाएं बरसने लगीं, मस्त मस्ती का झूला झुलाती मुझे।
मेरी नजरें हमेशा उसे ढूंढतीं, याद उसकी हमेशा रुलाती मुझे।।
बिना दीदार के, इस कठिन रोग का, कोई उपचार पाऊँ ये मुमकिन नहीं।।
उसकी यादों में.....

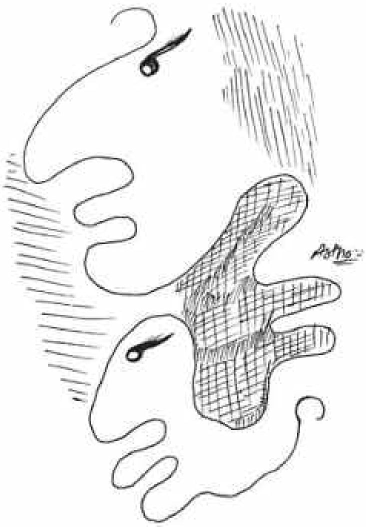

अब तो बढ़ने लगा मंजिले इश्क पर, साथ मेरे चले मेरा दिलदार है।
वो है रहबर मेरा, वो है मुर्शिद मेरा, वो है मेरा पिता वो मेरा यार है।
जिसने डूबे हुए को सहारा दिया, मैं उसे भूल जाऊँ ये मुमकिन नहीं।। उसकी यादों में.....

आसमां की बुलंदी पे उड़ता हुआ, मेरी कुव्वत नहीं, ये तेरा प्यार है।
हर जगह हर दिशा हर गली हर शहर, मेरे दिल में बसा मेरा सरकार है।
मेरी रग–रग लगी है उसे सोचने, मैं उसे भूल जाऊँ ये मुमकिन नहीं।।
उसकी यादों में....

◆

पता : D–1/216, संगम विहार, नई दिल्ली–110062
मो. : 9810318136

पारिभाषिक शब्दावली और भाषा निर्माण

❑ आरती 'आयुशी'

भाषा समाज और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो केवल संवाद का माध्यम नहीं है, बल्कि हमारी सोच, समझ और व्यवहार की दिशा तय करती है। जैसे–जैसे समाज में नई प्रौद्योगिकियाँ, विचारधाराएँ और वैज्ञानिक अवधारणाएँ विकसित होती हैं, वैसे–वैसे भाषा में भी नए शब्दों का समावेश होता है। इन नए शब्दों को हम ''परिभाषिक शब्दावली कहते हैं। परिभाषिक शब्दावली, किसी भी विषय के विशेष शब्दों का समूह होता है, जो उस विषय को समझने और व्यक्त करने में मदद करता है।''

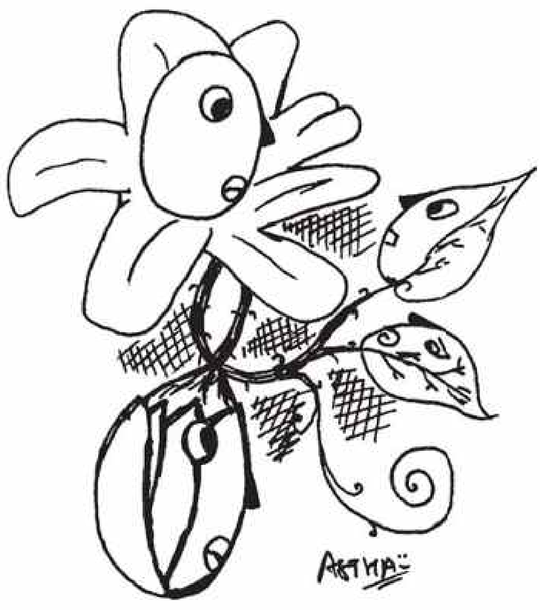

पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता और भूमिका

पारिभाषिक शब्दावली का विकास एक आवश्यक प्रक्रिया है, क्योंकि हर विषय की अपनी विशिष्टताएँ होती हैं। चाहे वह विज्ञान हो, चिकित्सा हो, तकनीक हो, या समाजशास्त्र–हर क्षेत्र की परिभाषिक शब्दावली होती है जो उस विषय की जटिलताओं और अवधारणाओं को समझने के लिए आवश्यक होती है। उदाहरण के लिए, 'डीएनए' या 'आणविक संरचना' जैसे शब्द यदि विज्ञान की भाषा में न हों, ता इन विषयों पर गहराई से चर्चा करना मुश्किल हो जाएगा।

पारिभाषिक शब्दावली की सबसे बड़ी भूमिका यह है कि यह भाषा को समृद्ध बनाती है, और उसे नये विचारों और आविष्कारों के अनुकूल बनाती है। जब कोई नया विचार या प्रौद्योगिकी उत्पन्न होती है, तो उसे व्यक्त करने के लिए शब्दावली का निर्माण आवश्यक हो जाता है।

विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में

विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में पारिभाषिक शब्दावली विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती है। जब वैज्ञानिक खोजें होती हैं या तकनीकी विकास होते हैं, तो उनके लिए नए शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के तौर पर, जैसे–जैसे इंटरनेट और कंप्यूटर का विकास हुआ, वैसे–वैसे 'सॉफ्टवेयर', 'हार्डवेयर', 'डाटा, बाउजर' जैसे शब्द हमारी भाषा का हिस्सा बने। ये शब्द तकनीकी प्रगति के साथ भाषा का हिस्सा बने और अब हमारी रोजमर्रा की भाषा का अभिन्न अंग हैं।

चिकित्सा और स्वास्थ्य क्षेत्र में

चिकित्सा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण एक महत्वपूर्ण

भूमिका निभाता है। जैसे–जैसे नई बीमारियों का पता चलता है, उनके लिए नए शब्दों की आवश्यकता होती है। 'कोविड–19 और 'वायरस' जैसे शब्द आज पूरी दुनिया में समझे जाते हैं, लेकिन इससे पहले इनका प्रयोग बहुत सीमित था। ये शब्द न केवल नए रोगों को पहचानने में मदद करते हैं, बल्कि उनके उपचार और रोकथाम की प्रक्रिया को भी सरल बनाते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली का विकासरू एक गहन प्रक्रिया

पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण एक गहन और योजनाबद्ध प्रक्रिया है। यह कोई स्वचालित या त्वरित प्रक्रिया नहीं है, बल्कि इसके पीछे कई चरण होते हैं।

किसी भी नए शब्द का निर्माण तब होता है जब किसी नई अवधारणा, खोज, या तकनीकी के बारे में जानकारी मिलती है। सबसे पहला कदम यह होता है कि उस विषय को समझा जाए और उसकी विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए एक सटीक शब्द गढ़ा जाए। उदाहरण के लिए, जब कंप्यूटर विज्ञान के क्षेत्र में 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) का विकास हुआ, तो इस अवधारणा का व्यक्त करने के लिए एक नए शब्द की आवश्यकता महसूस हुई। अवधारणा के विकास के बाद, नए शब्द का चयन किया जाता है। यह चयन इस बात पर निर्भर करता है कि वह शब्द उस अवधारणा को कितनी सरलता से और स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकता है। इसके बाद उस शब्द की एक परिभाषा तैयार की जाती है, जो उस शब्द के प्रयोग और उसके अर्थ को समझने में मदद करती है। उदाहरण के लिए, 'डीएनए' शब्द को गढ़ने के बाद उसकी परिभाषा दी गई, जिससे यह समझा जा सके कि यह आनुवांशिक कोड का वाहक है।

शब्द के चयन और परिभाषा के बाद आता है सबसे महत्वपूर्ण चरण–शब्द का समाज में प्रसार और उसकी स्वीकार्यता। जब कोई नया शब्द गढ़ा जाता है, तो वह पहले केवल विशेषज्ञों के बीच प्रचलित होता है। धीरे–धीरे इसे शैक्षणिक संस्थानों, मीडिया, और सरकारी संस्थाओं के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाया जाता है। यह सुनिश्चित किया जाता है कि उस शब्द को सही संदर्भ में और सही तरीके से उपयोग किया जाए। उदाहरण के लिए, 'कंप्यूटर' शब्द जब गढ़ा गया था, तब यह केवल वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों में प्रयुक्त होता था, लेकिन आज यह शब्द हमारी सामान्य भाषा का हिस्सा बन चुका है।

पारिभाषिक शब्दावली और अनुवाद की चुनौतियाँ

पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में सबसे बड़ी चुनौती यह होती है कि इसे किसी अन्य भाषा में अनूदित करते समय इसका मूल अर्थ न बदले। कई बार शब्द का अर्थ उसकी सांस्कृतिक या भाषायी पृष्ठभूमि से जुड़ा होता है, जिसे दूसरे भाषा में अनूदित करना कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी में 'टेक्नोलॉजी' का अनुवाद हिंदी में 'तकनीकी' के रूप में किया गया, लेकिन दोनों शब्दों के प्रयाग और संदर्भ में अंतर हो सकता है।

शब्दों के अनुवाद में सांस्कृतिक संदर्भ का भी ध्यान रखना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर, अंग्रेजी में 'सॉनेट' का हिंदी अनुवाद 'चतुष्पदी' किया जा सकता है, लेकिन इसका साहित्यिक संदर्भ बदल जाता है। इसलिए पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि वह शब्द कवल तकनीकी रूप से सही न हो, बल्कि उसका सांस्कृतिक संदर्भ भी सुरक्षित रहे।

नए शब्दों को समाज में स्वीकृति मिलने में भी समय लगता है। बहुत से लोग पुरानी शब्दावली के साथ अधिक सहज महसूस करते हैं, और नए शब्दों को अपनाने में हिचकिचाते हैं। उदाहरण के लिए, हिंदी में 'ई–मेल के लिए विद्युत संदेश' या 'इलेक्ट्रॉनिक मेल' कहा गया, लेकिन इन शब्दों को आमतौर पर प्रयोग में नहीं लाया गया। ई–मेलश शब्द ही अधिक प्रचलित हो गया क्यांकि लोग इसे अधिक सहज और सरल मानते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली का समाज पर प्रभाव

पारिभाषिक शब्दावली केवल भाषा को समृद्ध नहीं बनाती, बल्कि यह समाज को भी बदलने की क्षमता रखती है। नए शब्दों के माध्यम से नए विचारों का प्रसार होता है, जो समाज के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। जब लोग किसी नए शब्द को समझते हैं और उसे अपनी भाषा में शामिल करते हैं, तो वे उस शब्द से जुड़े नए विचारों और अवधारणाओं को भी स्वीकार करते हैं।

शैक्षिक क्षेत्र में पारिभाषिक शब्दावली का बहुत महत्व है। यह छात्रों को विभिन्न विषयों की गहन समझ विकसित करने में मदद करती है। जैसे–जैसे नई पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण होता है, वैसे–वैसे छात्रों का ज्ञान और उनकी समझ का दायरा बढ़ता है। उदाहरण के लिए, चिकित्सा विज्ञान में 'न्यूरोलॉजी, ऑर्थोपेडिक्स, 'कार्डियोलॉजी' जैसे शब्द केवल शब्द नहीं है, बल्कि वे संपूर्ण अध्ययन के विषय हैं।

विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में भी पारिभाषिक शब्दावली समाज को जागरूक करने में मदद करती है। जब समाज के लोग नए तकनीकी शब्दों को समझते हैं और उन्हें

अपनी भाषा में शामिल करते हैं, तो वे उस तकनीकी के उपयोग और उससे जुड़ी जानकारी को बेहतर ढंग से समझ पाते हैं। जैसे 'डिजिटल और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जैसे शब्द अब केवल वैज्ञानिक शब्दावली तक सीमित नहीं है, बल्कि सामान्य लोग भी इनके बार में जागरूक हा गए हैं।

पारिभाषिक शब्दावली भाषा निर्माण की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह भाषा को समय के साथ प्रासंगिक बनाए रखने में मदद करती है और समाज को नए विचारों और अवधारणाओं से जोड़ती है। जैसे–जैसे विज्ञान, तकनीक, और समाज में प्रगति होती है, वैसे–वैसे पारिभाषिक शब्दावली का विस्तार भी होता है।

यह केवल एक भाषायी प्रक्रिया नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। भाषा का विकास और उसमें नई शब्दावली का समावेश समाज की प्रगति और उसके विचारों में हो रहे बदलाव को दर्शाता है। पारिभाषिक शब्दावली भाषा को न केवल समृद्ध बनाती है, बल्कि यह समाज में नए वैज्ञानिक, तकनीकी, और सांस्कृतिक विचारों के प्रसार का मार्ग भी प्रशस्त करती है।

इस प्रक्रिया के माध्यम से हम न केवल नए विचारों को समझते और अपनाते हैं, बल्कि हम अपनी भाषा को भी आधुनिकता की ओर ले जाते हैं। पारिभाषिक शब्दावली हमें यह याद दिलाती है कि भाषा एक जीवंत और गतिशील इकाई है, जो समय के साथ बदलती रहती है और इसके माध्यम से हम अपने ज्ञान, विचार और पहचान को और भी समृद्ध करते हैं। ◆

पता : कमला नगर, आगरा–282005
मो. : 9956684383

सम्मान

''उत्तर प्रदेश'' के दिनेश कुमार गुप्ता 'संपादन प्रवीण' की मानद उपाधि से सम्मानित

उत्कृष्ट संपादन एवं शोध लेखन के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए मिला केसर देवी जानी स्मृति सम्मान

सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उत्तर प्रदश क नियमित प्रकाशन **'उत्तर प्रदेश'** हिंदी मासिक पत्रिका के प्रभारी संपादक दिनेश कुमार गुप्ता को उत्कृष्ट संपादन एवं शोध लेखन के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियों के लिए **'संपादन प्रवीण'** की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया है।

राजस्थान के श्रीनाथद्वारा में राष्ट्रभाषा हिंदी की उन्नति के लिए वर्ष 1937 में स्थापित प्रतिष्ठित साहित्यिक राष्ट्रीय संस्थान 'साहित्य मंडल, श्रीनाथद्वारा' द्वारा 12, 13 एवं 14 सितंबर, 2026 को तीन दिवसीय 'हिंदी लाओ–देश बचाओ' राष्ट्रीय समाराह का आयोजन किया गया। इसी अवसर पर आयोजित वार्षिक अलंकरण सम्मान समारोह में देश के उत्कृष्ट साहित्यिक संपादकां एवं साहित्यकारों को विभिन्न सम्मानों से विभूषित किया गया।

समारोह में सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उत्तर प्रदेश की हिंदी मासिक पत्रिका **'उत्तर प्रदेश'** के प्रभारी संपादक दिनेश कुमार गुप्ता को उनके उत्कृष्ट संपादन, शोध लेखन तथा साहित्यिक क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए **'संपादन प्रवीण'** की मानद उपाधि प्रदान की गई। इसके साथ ही उन्हें **श्रीमती केसर देवी जानी स्मृति सम्मान** से भी सम्मानित किया गया। सम्मान समारोह में गीतांजलि विश्वविद्यालय, उदयपुर के कुलपति डॉ. राकेश व्यास ने दिनेश कुमार गुप्ता को सम्मानित किया।

दिनेश कुमार गुप्ता को यह सम्मान मिलने पर सूचना निदेशक विशाल सिंह, अपर निदेशक अरविंद कुमार मिश्रा सहित विभाग के उच्च अधिकारियों, कर्मचारियों एवं विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं ने उन्हें हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं दीं।

चंद्रमा है मन मेरा

—मेघा राठी

1

मेरा मन चंद्रमा है और
तुम पंचम भाव में स्थित शुक्र।
तुम आत्मा की गहराइयों में अंकित
उन पूर्व संस्कारों की स्मृति के प्रतीक हो,
जिन्हें समय भी धुंधला नहीं कर सका।

तुमने मेरे मन में घर बनाया है,
वहाँ तर्क प्रवेश नहीं करते,
केवल अनुभूतियाँ ही
अपना निवास बनाती हैं।

शायद इसलिए तुमसे मिलना
किसी नई कहानी का आरंभ नहीं लगा,
बल्कि ऐसा लगा
जैसे आत्मा का कोई अधूरा अध्याय
वर्षों बाद फिर से खुल गया हो।

यदि चंद्र स्मृतियों का आकाश है,
तो पंचम भाव में स्थित शुक्र
उन स्मृतियों का मधुरतम संगीत है।

तुम्हारे आने से जाना
कि प्रेम केवल आकर्षण नहीं होता,
वह आत्मा के उन संस्कारों की प्रतिध्वनि है,
जिन्हें समय नहीं मिटाता,
केवल और गहरा करता है।

तभी लगता है
कि कुछ प्रेम कहानियाँ
लिखी नहीं जातीं,
वे पहले से ही
आत्मा के किसी शांत कोने में
अंकित होती हैं।

चंद्र उन्हें स्मृति देता है,
पंचम भाव का शुक्र उन्हें अनुराग देता है,
और जीवन
उन्हें पहचान लेने का
एक सुंदर अवसर बन जाता है।

2

फर्श से अर्श तक
और फिर अर्श से फर्श तक
ले आने का हुनर रखती हैं,
ये सीढ़ियां हैं जनाब
न जाने कितनी ही
तकदीर संवारती और
बिगाड़ती हैं।
हर कदम पर
उठती चाप की आवाज
फैसला कर देती है
किस्मत का।
कामयाबी की ये सीढ़ियां
हर किसी के लिए सहज नहीं
इसलिए
छिपी हुई सी,
मगर राशनी के दामन में सिमटी
रहती हैं ये सीढ़ियां
और इंतजार करती हैं
कौन आयेगा जो
अपना मुकद्दर
फर्श से अर्श की ओर ले जायगा।

◆

पता : एच–7 ए. पंजाबी बाग, भोपाल, (म.प्र.)–462001
मो. : 8817071084

भारत सरकार के रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स की रजिस्ट्री संख्या 33122/78
भारतीय डाक विभाग की डाक पंजीयन संख्या–एल.डब्लू./एन.पी. 432/2006

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रमुख प्रकाशन

उत्तर प्रदेश मासिक	:	समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार की मासिक पत्रिका समूल्य उपलब्ध एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।
नया दौर (उर्दू)	:	सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विषय की एक उर्दू मासिक पत्रिका, एक अंक रु. 15 – मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।
वार्षिकी (हिन्दी/अंग्रेजी)	:	उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के विस्तृत आंकड़ों एवं सूचनाओं का वार्षिक विवरण मूल्य रु. 325/– मात्र।

महत्वपूर्ण प्रकाशनों के लिए सम्पर्क करें

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र.
दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश के समस्त जिला सूचना कार्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. स्वत्वाधिकारी के लिए विशाल सिंह, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ में मुदित प्रभारी संपादक – **दिनेश कुमार गुप्ता**